CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्मेदाचल से काशी तक ऐतिहासिक यात्रा वृत्तान्त

काशी-दर्शन

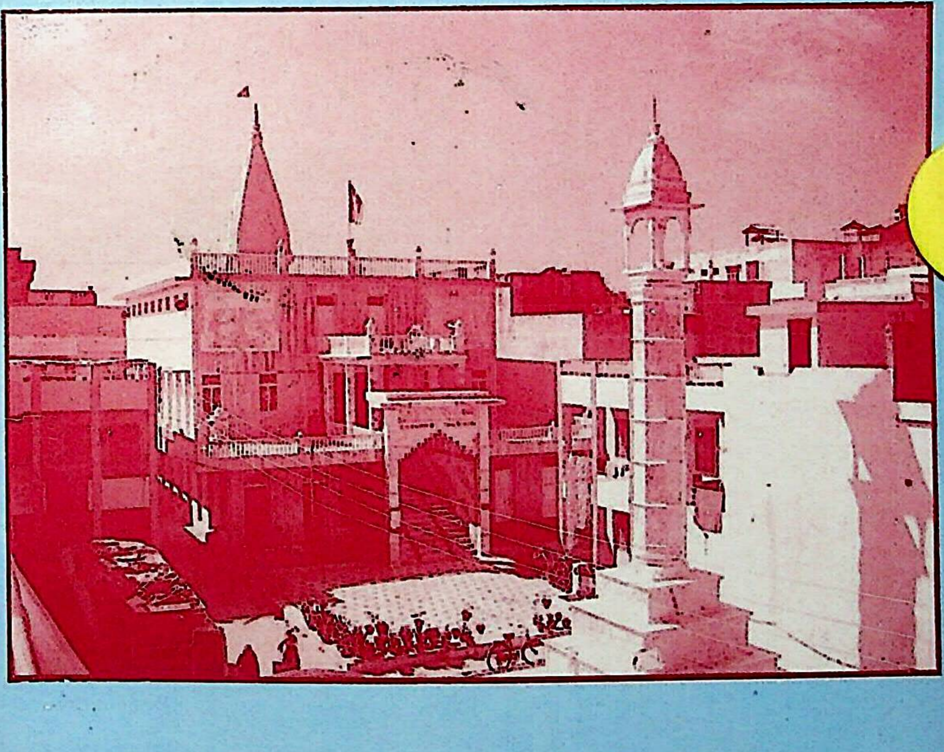

मुनि सुनीलसागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्षायोग (१९९१) काशी के अवसर पर

प्रस्तुत कृति प्रकाशित

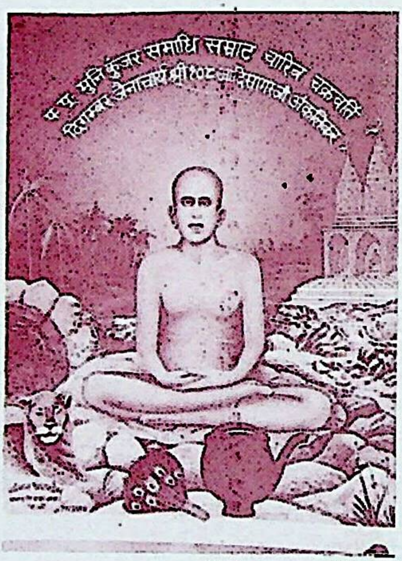

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती

आचार्य १०८ श्री आदिसागर जी महाराज

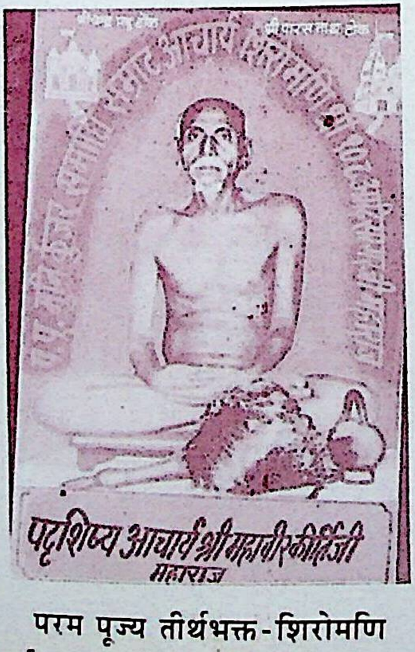

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि

आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्ति जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

11·5

सम्मेदाचल से काशी तक एक ऐतिहासिक यात्रा वृत्तान्त–

काशी-दर्शन

मुनि सुनील सागर

संघस्थ—आचार्य श्री सन्मतिसागर जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्मेदाचल से काशी तक एक ऐतिहासिक यात्रा वृत्तान्त–

- पुस्तक– **काशी-दर्शन**
- लेखक– मुनि श्री सुनील सागर जी
- आशीर्वाद– आ० श्री आदिसागर जी (अंकलीकर) के तृतीय पट्टाधीश तपस्वी सम्राट् आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज
- संपादन– डॉ० महेन्द्रकुमार जैन "मनुज"
- संस्करण– प्रथम जुलाई १९९९
- अर्थ सौजन्य– डॉ० निर्मल जैन, दीपा जैन
- प्रकाशक– श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर पुस्तकालय/वाचनालय भेलूपुर, वाराणसी (उ०प्र०)
- प्राप्तिस्थान–
  1. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर, मधुबन (बिहार)
  2. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, कुंडलपुर, जिला-दमोह (म.प्र.)
  3. जैन सिद्धान्त भवन, जेलरोड, आरा (बिहार)
  4. दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, गुलजार बाग पटना (बिहार)
  5. डॉ० निर्मल जैन, अरिहंत डाईग्नोस्टिक, महमूरगंज
  6. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर भेलूपुर, वाराणसी
  7. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, चम्पापुर, भागलपुर (बिहार)
- मुद्रण– महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-१०
- मुख पृष्ठ पर : भेलूपुर दि० जैन तीर्थ क्षेत्र, वाराणसी

SAMMEDACHAL TO KASHI A HISTORICAL PILIGIMAGE

KASHI-DARSHAN

BY

MUNI SUNIL SAGAR

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन (शोध) संस्थान
4550
(का. हि. वि. वि.) वाराणसी

आशीर्वाद

इतिहास अतीत का दर्पण होता है। मुनि सुनीलसागर जी द्वारा 'काशी-दर्शन' नामक ग्रन्थ प्रतिपादित हुआ है यथा नाम तथा गुण है। आचार्य विमलसागर जी ने ऐतिसाहिक उदाहरण २३.१०.९३ को दिया था कि जैन समाज में आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) की परम्परा और आचार्य शान्तिसागर दक्षिण की परम्परा इस युग में निर्बाध चली आ रही है। समाज का कर्त्तव्य है कि किसी प्रकार का विवाद न करके दोनों आचार्य परम्परा को आगम सम्मत मानकर वात्सल्य से धर्म प्रभावना करें।

प्रस्तुत पुस्तक में भगवान् सुपार्श्वनाथ, भगवान् चन्द्रनाथ, भगवान् श्रेयांसनाथ, भगवान् पार्श्वनाथ के अस्तित्व को सहज सरल एवं सरस भाषा में लिखा गया है। भव्य प्राणी इसका अध्ययन कर दिशा बोध प्राप्त कर सकेंगे। जिन साहित्य का प्रकाशन अच्छा कार्य है। अतः मेरा सभी को आशीर्वाद है।

अष्टाह्निका पर्व
२० जुलाई, १९९९

आचार्य सन्मतिसागर
काशी (वाराणसी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

आज समग्र मानव जाति भौतिक सुखों की ओर दौड़ रही है तथा सुविधामयी जीवन के सम्मुख है। ऐसे समय में पूज्य मुनिराजों का तपस्या-रत रहना एक आश्चर्य नहीं तो क्या है? ज्ञान, ध्यान, तप में सदा लवलीन रहने वाले मुनिराज यदा-कदा हम पामर प्राणियों पर दया कर सुख प्राप्ति का उपदेश भी देते हैं। प्रस्तुत कृति भी ऐसी ही है, जो ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ पाठकों को शुभ ध्यान में लगाएगी तथा मानव जीवन के सार्थक सूत्रों पर चर्चा करेगी। भगवान् पार्श्व-नाथ पर श्री सिंघई कुंजीलाल जी की कुछ कृतियाँ उपलब्ध है यथा-कुंज विलास, कवि वृन्दावन जी जो चौबीस तीर्थंकर पूजन के रचयिता है वे बनारस के थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने भी कई रचनाएँ भगवान् पार्श्वनाथ पर लिखी हैं।

ज्ञातव्य ही है कि टीकमगढ़ चातुर्मास के उपरान्त आचार्य श्री सन्मतिसागर जी संघ का जब बुन्देलखण्ड से शिखर जी की ओर विहार हुआ, तब शिखर जी पहुँचने तक जितनी भी घटनाएँ हुईं, तीर्थ क्षेत्र मिले, धार्मिक कार्यक्रम, प्रतिष्ठा आदि का पूर्ण विवरण और सम्मेदशिखर जी का पूर्ण चित्रण मुनिश्री ने "मेरी सम्मेदशिखर यात्रा" में किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में सम्मेदशिखर से वाराणसी तक मार्ग में जो घटनाएँ हुईं उनका, मंदारगिरि, चम्पापुर, भागलपुर, बाढ़, गुलजार बाग, पटना और आरा के जैन मन्दिरों-मूर्तियों का तथा उपदेशात्मक प्रसंगों एवं संघ के सान्निध्य में हुए कार्यक्रमों का सजीव चित्रण करके वाराणसी जनपद के चारों तीर्थंकरों की जन्मभूमियों, उनके इतिहास, पुरावास्तु, प्राचीन मूर्ति विज्ञान, सम्बद्ध पुराणपुरुषों, कथानकों आदि का सांगोपांग चित्रण किया है। इसे आप पढ़ेंगे तो प्रतीत होगा मुनिश्री सुनीलसागर जी स्वयं बोल रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान, ध्यान, तप और चारित्र में निष्ठ मुनिश्री 'पथिक', 'विश्व का सूर्य', 'मेरी सम्मेदशिखर यात्रा', 'चम्पापुर की चाँदनी', 'धरती के देवता' आदि एक दर्जन से अधिक पुस्तकों के लेखक/अनुवादक हैं। आपको बी०कॉम एवं शास्त्री कक्षाओं तक का शिक्षण प्राप्त है। मात्र २०-२१ वर्ष की वय में लिखित उपन्यास "पथिक" जैन उपन्यासों में एक श्रेष्ठ कृति कही जा सकती है। आपको व्याकरण, साहित्य, दर्शन, सिद्धान्त, विज्ञान, गणित, इतिहास, पुरातत्व, वास्तु एवं मूर्ति कला का अच्छा ज्ञान है। आपकी कवित्व प्रतिभा प्रखर है। किसी घटना, अनुकरणीय प्रसंग, तीर्थ, अध्यात्म को थोड़े शब्दों में ज्यादा विषय को कैसे बाँधा जाता है, कोई इनसे सीखे।

१० मई से १८ जून तक आचार्य सन्मतिसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में वाराणसी में हुई अष्टपाहुड की वाचना में मुनिश्री की पूर्ण प्रतिभा तब मुखरित हुई, जब कई आगमिक शंकाओं का आपने सोक्तित्व समाधान किया। गाथाओं के उद्धरणों, पूर्वाचार्यों और उनकी कृतियों आदि की जानकारी से तो हम आश्चर्यान्वित हैं कि शास्त्री तक अध्ययन प्राप्त, सदा पद विहार करने वाले, अल्प-वयी मुनिश्री ने इतना ज्ञानार्जन कैसे कर लिया जिन्हें कोई स्थायी बड़े पुस्तकालय की सुविधा भी प्राप्त होना सम्भव नहीं है। आचार्य समन्तभद्र के लक्षणों सा खरा उतरने वाला आचार्य संघ सदा वंदनीय/पूजनीय है।

प्रस्तुत पुस्तक 'काशी-दर्शन' की सामग्री संशोधन में श्रद्धेय डॉ० फूलचंद्र जी 'प्रेमी', श्री सत्येन्द्र मोहन जैन, श्री सुनील जैन एवं श्री शारदा प्रसाद जैन का भी सराहनीय योगदान प्राप्त हुआ। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ।

डॉ० महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'
प्रतिष्ठाचार्य
भदैनी, वाराणसी

आ० श्री सन्मतिसागर महाराज ससंघ
वाराणसी चातुर्मास स्थापना समारोह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

सर्वविदित है कि तीर्थंकर के चरण जहाँ पड़ते हैं वह स्थान पवित्र हो जाता है, पूज्य हो जाता है किन्तु जिस स्थान पर साक्षात् तीर्थंकर का जन्म हो वह न सिर्फ पूज्य वरन् अतिशययुक्त तीर्थक्षेत्र बन जाता है।

आगम में कहा गया है कि तीर्थंकर के गर्भ में आने से ६ माह पूर्व से जन्म लेने तक अर्थात् १५ महिनों तक इन्द्रों द्वारा उस स्थान पर रत्नों की वृष्टि की जाती है जहाँ उस महान् आत्मा को अवतरित होना है। यह उस पवित्र भूमि की महत्ता को स्वयं दर्शाता है। इतना ही नहीं तीर्थंकर का जन्म होते ही सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान हो उठता है एवं वह सपत्नी प्रसूति गृह में जाकर शिशु तीर्थंकर को माता से लेकर सुमेरुपर्वत पर जाता है और क्षीरसागर के अमृतजल से तीर्थंकर का अभिषेक करता है। अर्थात् तीर्थंकर के जन्म लेने से न सिर्फ पृथ्वीलोक में वरन् दूर-दूर तक स्वर्गों एवं नरकों में भी आनन्द छा जाता है। संसार के समस्त जीव आनन्द एवं सन्तोष की अनुभूति करने लगते हैं, उनका दुःख दर्द दूर हो जाता है।

उपरोक्त छोटा सा वर्णन तीर्थंकर के जन्म लेने की महत्ता को दर्शाता है। काशी (वाराणसी) का यह परम सौभाग्य है कि यहाँ जिन धर्म के चार तीर्थंकरों का जन्म हुआ है। जैनधर्म के सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ जी भदैनी में, आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु जी चन्द्रपुरी (चंद्रावती, चौबेपुर) में, ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ जी सिंहपुरी (सारनाथ) में एवं तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी भेलूपुर क्षेत्र में अवतरित हुये। उपरोक्त तथ्य इस शहर की पवित्रता को स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्दर्शित करता है एवं उपरोक्त क्षेत्र अतिशयों से परिपूर्ण हैं, मनोरथ पूरे करने वाले हैं।

वैदिक साहित्य में काशी को शाश्वत तीर्थ कहा गया है। चार तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने से जैनधर्म भी इसकी पुष्टि करता है। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ जी के साथ ही तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी का उल्लेख वैदिक एवं बौद्ध साहित्य में मिलता है एवं आधुनिक इति-हासकार भी इनके प्रभाव को स्वीकार करते हैं। भारतीय जीवन शैली में 'अहिंसा' का प्रभाव आपकी ही देन है।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी का लोक पर कितना प्रभाव रहा इसका प्रमाण आपकी आज सर्वाधिक मूर्तियों, जिनालयों के रूप में दिग्द-र्शित है; और यह जैन धर्म की ऐतिहासिकता को ईसा पूर्व नवीं शताब्दी तक जैनेतर इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि विश्व के अधिकांश धर्मों का उद्भव इसके बहुत बाद का माना जाता है, वहीं जैन धर्म की परम्परा तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी के पूर्ववर्ती अनेक तीर्थंकरों तक जाती है, जो इस धर्म को विश्व का प्राचीनतम् धर्म बनाती है।

आज जैनों की संख्या जनगणना में कम अवश्य है किन्तु भारतीय संस्कृति में इसके सिद्धान्तों का व्यापक असर देखा जा सकता है। महात्मा गाँधी का सत्य अहिंसा सिद्धान्त भी इसी से प्रेरित है। जैनधर्म का आगम (साहित्य) अत्यन्त विस्तृत है। इसमें जीवन का शायद ही कोई पक्ष ऐसा हो जो अछूता हो। संसार की निःसारता दिखलाने का जहाँ विपुल साहित्य उपलब्ध है वहीं लोक का भूगोल रचना साहित्य, तंत्र विद्या, वास्तु शास्त्र ज्योतिष शास्त्र इत्यादि अनेक विषयों पर प्राचीन शास्त्र इस धर्म की धरोहर हैं।

जैन धर्म में व्यक्ति के स्वयं सुधरने, परिष्कृत होने की बात कही गई है। इस धर्म की स्पष्ट धारणा है कि यदि व्यक्ति अपने को संयमित कर लें तो पूरा देश, विश्व सुधर जायेगा। अतः इस धर्म में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं के परिष्कृत होने की बात कही गई है। जैन धर्म की स्पष्ट धारणा है कि यदि व्यक्ति अपने को संयमित कर लें तो पूरा देश, विश्व सुधर जावेगा। अतः इस धर्म में स्वयं के परिष्कृत होने की बात जगह-जगह कही गई है। आगम तो यहाँ तक कहता है कि व्यक्ति अपने प्रयास से 'मानव से मोक्ष' तक की यात्रा पूर्ण कर सकता है। मार्गस्वरूप ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, ऐलक, मुनि, आचार्य.... का मार्ग बतलाया गया है, जो सर्वथा कल्याणकारी है।

हर्ष का विषय है कि जैन धर्म के महान् आचार्य परमपूज्य आदिसागर जी (अंकलीकर) ने मुनि परम्परा को और अधिक दैदीप्यमान बनाया। उनके परम अनुरागी शिष्य आचार्य महावीर-कीर्ति जी महाराज ने उस कड़ी को आगे बढ़ाया एवं वर्तमान आचार्य १०८ सन्मतिसागर जी महाराज इसको अपनी दृढ़ तपस्या, त्याग, ज्ञान एवं संयम के अद्‌भुत संगम से जन-जन तक पहुँचा रहे हैं। जैनधर्म की पताका को आगे बढ़ा रहे हैं। यह काशीवासियों का परम सौभाग्य है कि ऐसे संघ का वर्षायोग (१९९९) इस धर्म प्राण नगरी में हो रहा है।

भेलूपुर जी जो भगवान् पार्श्वनाथ जी की जन्मभूमि है उस पर ऐसे परम तपस्वी १०८ आचार्य सन्मतिसागर जी महाराज का २१ पीच्छियों (साधु-साध्वियों) के साथ ससंघ इस क्षेत्र के अतिशय को निश्चल ही द्विगुणित करता है। आचार्य श्री की अनुशासन-प्रियता जहाँ अनुकरणीय है वहीं उनका वात्सल्य श्रावकों के लिए अनमोल निधि हैं।

आपके संघ के तेजस्वी मुनि १०८ श्री सुनीलसागर जी से चर्चा हो रही थी तब मैंने आपसे 'काशी-दर्शन' पर एक पुस्तिका लिखने का आग्रह किया था। उसके लगभग एक सप्ताह पश्चात् जब मैं आचार्य श्री से मिला तो मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ कि उक्त विषय की अस्सी पृष्ठीय पाण्डुलिपि मेरे सामने थी, जिसे आचार्य श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देख चुके थे, और जो छपने को तैयार थी। शायद यह आप एवं उनके संघस्थ साधु समुदाय से ही सम्भव थी।

आचार्य श्री से मैंने निवेदन किया कि कृपया भूमिका आप किसी विद्वान् से लिखवा देवें तो आचार्य श्री ने यह गुरुतर दायित्व मेरे कमजोर कन्धों पर सौंप दिया। वस्तुतः मैं आचार्य श्री के आदेश को टाल नहीं सका वहीं मुझे अपनी लघुता का बार-बार ध्यान आता रहा कि कहीं त्रुटियाँ न हो जावे। सुधी पाठक मेरी त्रुटियों को क्षमा करेगें।

मुनिश्री सुनीलसागर जी की पुस्तक 'काशी-दर्शन' में एक ओर तो सम्मेदशिखर से वाराणसी तक की यात्रा वृत्तांत एवं यात्रा के बीच पड़ने वाले क्षेत्रों, घटनाओं का जीवन्त वर्णन है वहीं दूसरी ओर काशी (वाराणसी) के सम्बन्ध में इतनी व्यापक एवं खोजपूर्ण जानकारी है, शायद यहाँ रहने वाले जैन श्रावकों भी नहीं जानते होगें। मेरी ऐसी दृढ़ धारणा है कि पुस्तक को एक बार आरम्भ करके पाठक इसे पूरा पढ़ें बिना अपने को नहीं रोक पायेगें। यह इस पुस्तक की महत्ता को बढ़ाता है। इसमें एक ओर जहाँ घटनाओं, जैन क्षेत्रों का विवरण है वहीं साथ ही साथ जैन धर्म ने गूढ़ विषयों को सरल भाषा में पिरोया गया है। जिसे पाठक स्वयं आत्मसात कर सकते हैं।

आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि चार तीर्थंकरों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देने वाली पुस्तक की बड़ी कमी महसूस की जा रही थी उसे यह पुस्तक पूरी काशी एवं जिज्ञासु पाठकों को इस दिशा में शोध करने को प्रेरित करेगी। इस पुस्तक में आचार्य श्री एवं संघ की कार्यप्रणाली की जहाँ विस्तृत जानकारी मिलती है वहीं इस पुस्तक में आचार्य श्री के प्रवचन विशेष पठनीय, मननीय है जो हमें धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ने को प्रेरित करते है।

महावीर प्रेस ने इसे इतने अल्प समय में प्रस्तुत पुस्तक छापकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दी, इसके लिए वे सब बधाई के पात्र हैं। पुस्तक के प्रकाशन में धर्मानुरागी डॉ० निर्मल जैन एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमति दीपा जैन का सहयोग रहा, उन्हें भी इस अनमोल कृति को आप सबके सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अन्त में तपस्वी सम्राट् आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज के चरणों में प्रस्तुत कृति अर्पित करते हुए अपने आप को महान् सौभाग्यशाली समझता हूँ। मुनिश्री सुनीलसागर जी की यह कृति जिज्ञासु पाठकों हेतु निश्चित रूप में पठनीय है, वंदनीय है।

जय पार्श्वनाथ !

सुनील जैन
बी०काम (आनर्स) एम.बी.एम.
(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

बी. २०/१०० भेलूपुर
वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

एक

* पावन धाम मंदारगिरि २
* भगवान् वासुपूज्य की जन्मस्थली : चम्पापुर ५
* चम्पापुर से सम्बन्धित अन्य महापुरुष ७
* चम्पापुर की जैन मूर्ति-कला एवं वास्तु ९
* चातुर्मास स्थापन एवं विहार १३

दो

* बाढ़नगर का जिन मन्दिर : व्यवस्था अपेक्षित १७
* संसार की निस्सारता १७
* दिगम्बर मुनि एवं उनकी चर्या २०
* चरैवेति चरैवेति २२

तीन

* सुदर्शन स्वामी ब्रह्मचर्य के अवतार २५
* मुनि संवेगसागर जी का समाधि-मरण २८
* आचार्य महावीर कीर्ति राष्ट्रीय संगोष्ठी ३०
* पाटलिपुत्र-पटना ३०
* आचार्य श्री की ६१वीं जन्म जयंती ३१
* लोचन, चर्या, दीक्षा, देखो पुण्य प्रसंग ३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार

* जैन बालाविश्राम धनुपुरा और मन्दिर ३५
* आरा नगर में प्रवेश ३६
* जेल रोड के चन्द्रप्रभु, पार्श्वनाथ एवं धर्मनाथ मन्दिर ३७
* भगवान् ऋषभनाथ जयन्ती एवं अष्टाह्निका पर्व महोत्सव ३८
* महावीर जयन्ती पंच दिवसीय आयोजन ४०
* मेरी सम्मेदशिखर यात्रा का विमोचन ४२
* आरा के जैन मन्दिर एवं धर्मशालाएँ ४४
* जिनालयों का आधिक्य : कुछ कारण ४६
* शिखरजी दुर्घटना के पूर्व संकेत ४८

पाँच

* बोधी दुर्लभ ५०
* क्या कहते हैं वेदपुराण ५२
* गुरु-शिष्य मिलन ५४

छह

* तीर्थंकर चन्द्रप्रभु ५६
* चन्द्रप्रभु की जन्मस्थली-चन्द्रपुरी ५९
* तीर्थंकर श्रेयांसनाथ ६०
* कल्याणक भूमि सिंहपुरी ६२
* महात्माबुद्ध ६४
* सारनाथ की सार्थकता ६७

सात

* काशी को पद विहार ६८
* तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ ६९
* सुपार्श्वनाथ जन्मस्थली पर दो मन्दिर ७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* वाराणसी जनपद में जैन संस्कृति ७१
* काशी की प्राचीनता ७२
* वाराणसी नामकरण ७३
* वाराणसी के अन्य मन्दिरों में स्थापित जैन मूर्तियाँ ७५

आठ

* संग्रहालयों में प्राचीन जैन मूर्तियाँ ७८
* अमर रहे जिन धर्म हमारा (गीत) ८१
* गृहस्थाचार प्रवर्तन स्थली काशी ८२
* आचार्य समन्तभद्र का चमत्कार ८३
* साहित्यकारों की दृष्टि में भगवान् पार्श्वनाथ ८९
* पुरा-ऐतिहासिक पार्श्वनाथ जन्मस्थली ९६

नौ

* अष्टपाहुड की वाचना १०१
* पावन पर्व श्रुतपंचमी १०३
* श्रुत रक्षा पर्व १०८
* विद्वत् संगोष्ठी १०९
* केशलोंच व स्थानान्तरण ११०

दस

* प्रार्थना से परमात्मा की प्राप्ति संभव :
* आचार्य सन्मतिसागर जी ११२
* मूल्य समर्पण और श्रद्धा का होता है ११४
* संक्षिप्त वास्तु परिचय ११६
* काशी जनपद के दिगम्बर जैन मन्दिरों की सूची ११८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँच सूत्र

देव, शास्त्र गुरु वंदना, करो आत्म का ज्ञान ।
मान शीघ्र मन से तजो, मान-मान अभिमान ।। १ ।।

समता को साधो सदा, बनकर समतावान ।
शुद्ध, बुद्ध चैतन्य का, सदा लगाओ ध्यान ।। २ ।।

अगर चाहते सुख सदा सदय बनो धीमान ।
बोओगे सो पाओगे, बबूल कटहल आम ।। ३ ।।

दया भाव रक्खो सदा, सदा करो उपकार ।
नीति नियम विचार कर, सदा चरो आचार ।। ४ ।।

सुधार पर का न करो, निज का करो सुधार ।
सुधर-सुधर सुन्दर बनो, पाओ निज आधार ।। ५ ।।

—मुनि सुनीलसागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीतरागाय नमः

सम्मेदाचल से काशी तक एक ऐतिहासिक यात्रा-वृत्तान्त

काशी-दर्शन

एक

अपनी भगवती प्रज्ञा को पूर्णरूपेण जागृत करनेके लिये, निज शुद्धात्म तत्त्व प्राप्ति के लिये महापुरुषों (तीर्थंकरों) ने कहाँ-कहाँ साधना-निराधना की ? जब इस बात का विचार करते हैं तो उन क्षेत्रों में काशी (बनारस) का भी एक महत्वपूर्ण नाम प्राप्त होता है। खास बात तो यह है कि जो काशी भगवान् आदिनाथ के समय थी, भगवान् सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभु, श्रेयांसनाथ और पार्श्वनाथ के समय थी, लगभग वही काशी आज भी है। यह बात कई ऐतिहासिक साक्ष्यों से प्रमाणित होती है।

मुझे यहाँ काशी नगरी और उससे संबंधित महापुरुषों तथा क्षेत्रों संबंधी चर्चा करनी है, फिर भी मैं यहाँ अपनी बात काशी से शुरू न करके सम्मेदशिखर से शुरू करूँगा। इससे मेरे दो प्रयोजन सधेंगे। पहला तो शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर के साथ-साथ मंदारगिरि, चम्पापुर एवं पाटलिपुत्र (पटना) की पावन भूमि के स्मरण के साथ-साथ वहाँ से मोक्ष पधारें महापुरुषों को वंदन हो जायेगा और दूसरा यह कि यह "काशी-दर्शन" (पुस्तक) "मेरी सम्मेदशिखर यात्रा" से जुड़ जायेगी।

मैंने "मेरी सम्मेदशिखर यात्रा" (पुस्तक) में टीकमगढ़, पपौरा जी, आहार जी, द्रोणगिर जी, श्रेयांसगिरि, सतना, रीवा, मिर्जा-पुर, गया, कोल्हुआ पहाड़, कुंडलपुर, नालंदा, पावापुर, राजगृही,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

झूमरी तलैया, सरिया आदि स्थानों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए सम्मेदशिखर का विशेष वर्णन किया है तथा यात्रा के खट्टे, मीठे, कड़वे कुछ अनुभवों को भी लिखा है। ठीक उसी तरह "काशी-दर्शन" में भी भौगोलिक मार्ग प्रदर्शक का कार्य करते हुये चंपापुर, पाटलिपुत्र, आरा, बसाढ़, बक्सर, गाजीपुर आदि का वर्णन करते हुए काशी का वर्णन किया है।

काशी का क्षेत्र वृहद् माना गया है इसलिये चंद्रपुरी, सारनाथ, भेलूपुर, भदैनी घाट और पंचायती मंदिर का वर्णन संयुक्त किया जायेगा।

卐 卐 卐 卐 卐

पावनधाम मंदारगिरि

बंदू गिरि सम्मेद को, हाथ जोड़ धर माथ।
जो पाते दर्शन भवि, वे होते जग-नाथ ।।

इकतीस मई १९९८ की तपती दोपहरी में विहार हुआ था संघ का सम्मेदशिखर जी शाश्वत धाम से। गिरिडीह, देवघर होते हुये मंदारगिरिजी पहुँचे। यह पहाड़ी बौंसी ग्राम से लगभग दो कि०मी० दूर है। यहाँ से भगवान् वासुपूज्य स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया था। दीक्षा एवं ज्ञान कल्याणक भी यहीं हुये, ऐसा जैन कथा ग्रन्थों से ज्ञात होता है।

यह मान्यता कदापि मिथ्या नहीं हो सकती कि मंदारगिरि (मंदरशैल) चम्पापुर का वाह्य उद्यान रहा होगा। क्योंकि प्रधान कथाग्रन्थों में तीर्थंकर की जन्म नगरी का माप १२×४.५ योजन बताया गया है। इसे हम वर्तमान भाषामें १४४×५४ किमी० (लगभग) कह सकते हैं। जबकि चम्पापुर और मंदारगिरि में मात्र ३५-३७ किमी० का अंतर है। अगर वर्तमान चम्पापुर को केन्द्र बिंन्दु भी मान लें तब भी यह सिद्ध हो जायेगा। फाहियान ने चम्पा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को पाटलिपुत्र (पटना) से १८ योजन अर्थात् २१६ किमी० के लगभग माना है जो वर्तमान दृष्टिकोण से भी लगभग ठीक बैठता है। कनिंघम ने भी चम्पापुर को भागलपुर से चौबीस मील अर्थात् छत्तीस किमी० दूर पत्थर घाटा पहाड़ी के निकट बताया है। महाकवि दण्डी के "दशकुमार-चरित के अनुसार "अंगेषु गंगातटे बहिश्च" अर्थात् भागलपुर से २ मील (३ किमी०) के लगभग माना है।

मेरा एक स्वतंत्र अनुमान यह भी है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने राज्य व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये जिन बावन जनपदों का गठन किया था, उनमें एक जनपद "अंग" भी था। प्रबुद्ध जन विचार कर सकते हैं कि भगवान् आदिनाथ का साम्राज्य कितना लम्बा-चौड़ा रहा होगा और उसमें मात्र बावन जन-पदों का गठन यह सूचित करता है कि जो अति विशाल जनपद रहे होंगे उन्हें ही इनके अंतर्गत गिना गया होगा। एक बात यह भी है कि जैन, बौद्ध और वैदिक ग्रन्थों में जिन छह महानगरों के नाम बताये गये है उनमें चम्पापुर का भी नाम है। (देखिये—साकेत, राजगृह, श्रावस्ती, कोशाम्बी, काशी और चम्पापुर)। विचार कर सकते हैं है कि उतने बड़े भू-भाग पर मात्र छह महानगरोंकी कल्पना, जनपदों की कितनी विशालता को दर्शाती है। तब की अपेक्षा बहुत छोटे भू-भाग वाले भारत में जब आज भी दिल्ली, मुम्बई (बम्बई), कलकत्ता और चेन्नई (मद्रास) जैसे महानगर सैकड़ों किमी० में फैले हैं तब सोच सकते हैं कि चम्पापुर का विस्तार कितना रहा होगा।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से यह कह सकते हैं कि भगवान् वासुपूज्य कालीन चम्पानगरी का विस्तार १०० से अधिक कि० मी० रहा होगा और मंदारगिरि उसी के अंतर्गत माना जाता था।

वर्तमान में कुछ हिन्दुओं ने भी वहाँ एक मन्दिर बना लिया है। उनकी दलील है कि यह वही मंदर शैल है जिसे समुद्र मंथन के समय देवों और राक्षसों ने मथानी बनाया था। वे लोग यह भी कहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं कि मंदिर में विराजमान काले पाषाण के चरण विष्णु के हैं। उन लोगों ने पौराणिक अथवा प्राचीन प्रमाण बनाने के कुछ कुत्सित कार्य भी किये हैं। जैसे—पहाड़ की गोलाई में रस्सी द्वारा घूमने जैसे निशान, पत्थरों–शिला खण्डों में कुदेवों की मूर्तियाँ और स्थानों के नामकरण आदि। इस विपत्ति से बचने के लिये दिगम्बर जैनों को सावधान रहना आवश्यक है।

पर्वत पर वासुपूज्य भगवान के दर्शन किये। अब पहाड़ पर एक विशाल वासुपूज्य प्रभु की मूर्ति भी विराजमान हो गयी है। वन्दना से वापिस आते समय करीब ३०–३३ प्रतिशत पहाड़ उतरने के बाद हिन्दु मन्दिर के पास से निकल रहे थे तो आचार्य गुरुदेव श्री सन्मतिसागरजी ने जिस चट्टान पर यह मन्दिर बना है उस चट्टान की पिछली ओर संकेत करते हुये बताया देखो वहाँ एक अधूरी दिगम्बर जैन विशाल प्रतिमा है। हम लोगों ने देखा, वास्तव में कुछ गहराई में कुंडलपुर (दमोह) के बड़े बाबा जैसा मुख-मंडल दिखा। उस अधूरी आकृति से ऐसा संकेत मिलता है कि अगर वह पूरी हो गई होती अथवा भविष्य में पूरी हो तो उस मूर्ति की ऊँचाई सिंहासन सहित पच्चीस–छब्बीस फुट से कम नहीं होगी। इस ओर भी विज्ञ समाज का ध्यान जाना आवश्यक है।

उस मनोहारी अद्भुत शांतरसयुक्त अधूरी मूर्ति को देखकर साधु संघ बौंसी पहुँचा जहाँ एक विशाल धर्मशाला और दो मन्दिर अवस्थित हैं। आज सुबह से ही बहुत जनसमुदाय एकत्रित हो चुका था क्योंकि भगवान् वासुपूज्य की प्रतिमा स्थापन की द्वितीय वर्षगाँठ भी थी और आचार्य श्री भी संघ सहित विराजमान हुये थे। एक विधान भी हुआ, जिसमें लगभग सौ महानुभावों ने भाग लिया। भागलपुर की समाज ने आचार्य श्री के चरणों में भागलपुर पधारने हेतु श्रीफल अर्पित किया। शाम को ही संघ ने चम्पापुर की ओर विहार कर दिया।

卐 卐 卐 卐 卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान वासुपूज्य जी की जन्मस्थली : चम्पापुर

सत्रह जून'९८ को चम्पापुर जी पहुँचे। यह वही चम्पापुर है जिसकी स्थापना भगवान् आदिनाथ ने की थी। भगवान् आदिनाथ से भगवान् वासुपूज्य के अन्तराल में इस नगर को अनेक महापुरुषों ने सुशोभित किया। तदनन्तर भगवान् श्रेयांसनाथ के बाद इक्ष्वाकुवंशी तथा काश्यप गोत्री राजा वसुपूज्य एवं उनकी प्रिया स्त्री जयावती (विजया) के पावन प्रासाद में फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन भगवान् वासुपूज्य ने जन्म लिया।

सौधर्म आदि देवों ने तीर्थंकर बालक को सुमेरु पर्वतपर ले जाकर क्षीर सागर से लाये हुए जल से अभिषेक किया, आभूषण पहिनाये, वासुपूज्य नाम रखा, घर वापिस लाये और अनेक महोत्सव कर अपने-अपने स्थान को चले गये।

श्री श्रेयांसनाथ भगवान् के तीर्थ से जब चौवन सागर प्रमाण काल बीत चुका था और अन्तिम पल्य के तृतीय भाग में जब धर्म की संतति का विच्छेद हुआ था, तब वासुपूज्य भगवान् का जन्म हुआ था। इनकी आयु भी इसी अन्तर में सम्मिलित थी, वे सत्तर धनुष ऊँचे थे, उनकी बहत्तर लाख वर्ष की आयु थी और कुंकुम के समान शरीर की कांति थी।

जब कुमार काल के अठारह लाख वर्ष बीत गये तब संसार से विरक्त होकर तीन ज्ञान के धारी बाल ब्रह्मचारी भगवान विचार करने लगे यह निर्बुद्धि प्राणी, विषयों में आसक्त होकर अपनी आत्मा को अपने ही द्वारा बाँध लेता है तथा चार प्रकार के बन्ध से चार प्रकार के दुःख भोगता हुआ इस अनादि संसार वन में भ्रमण करता रहता है। अब मैं कालादि लब्धियों से उत्तम गुण को प्रकट करने वाले सन्मार्ग को प्राप्त हुआ हूँ। अतः मुझे मोक्ष रूपी सद्गति ही प्राप्त करनी चाहिये। इस प्रकार जब भगवान् चिन्तन कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहे थे, तभी लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति प्रारम्भ कर दी। देवों ने दीक्षाकल्याणक के समय होने वाला अभिषेक किया, आभूषण पहिनाये तथा अनेक उत्सव किये। राजकुमार वासुपूज्य देवों द्वारा उठाई हुई पालकी पर आरुढ़ होकर मनोहर नाम उद्यान में पहुँचे तथा एक उपवास का नियम लेकर फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन सायं-काल के समय विशाल नक्षत्र में सामायिक चारित्र धारण कर मनः-पर्यय ज्ञान के धारी हो गये। दूसरे दिन महापुर के राजा जय (सुरेन्द्र-नाथ) के यहाँ उनकी क्षीरान्न से पारणा हुई तथा पंचाश्चर्य हुये।

छद्मस्थ अवस्था का एक वर्ष बीत जाने के बाद भगवान् अपने दीक्षा वन में आये। वहाँ उन्होंने कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठकर दो उपवासों का नियम लिया। ध्यानावस्था से माघ शुक्ला द्वितीया के दिन सायंकाल के समय विशाखा नक्षत्र में उन्होंने चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अब वे जिनराज हो गये। सौधर्म इन्द्र तथा अनेकों देवों, मनुष्यों ने उस समय उनकी पूजा की। वे सधर्म को आदि लेकर छ्यासठ गणधरों से वन्दित थे, बारह सौ पूर्वधारी उनकी सेवा करते थे। उन्तालीस हजार दो सौ शिक्षक मुनि उनकी स्तुति करते थे। पाँच हजार चार सौ अवधिज्ञानी, छह हजार केवलज्ञानी, दस हजार विक्रिया ऋद्धि के धारक छह हजार मनः-पर्ययज्ञानी, चार हजार दो सौ वादी मुनि, इस प्रकार सभी बहत्तर हजार मुनि उनके समवशरण में थे। एक लाख छह हजार आर्यिकायें थीं। प्रमुख आर्यिका का नाम वरसेना था। दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकाओं एवं असंख्यात देव तथा तिर्यंचों से प्रभु स्तुत हुये। इस सम्पूर्ण समुदाय के साथ उन्होंने समस्त आर्यक्षेत्र में विहार किया। अपने जीवन काल के एक हजार वर्ष उन्होंने क्रम-क्रम से चम्पापुर को भी दिये।

जब आयु में एक मास शेष रह गया तब योग-निरोधकर रजत मालिका नदी के किनारे की भूमि पर वर्तमान मन्दारगिरि के शिखर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को सुशोभित करने वाले मनोहर उद्यानमें पर्यंकासन से स्थित हुए तथा उत्तर पुराणानुसार भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन सायंकाल के समय विशाखा नक्षत्र में चौरनवे मुनियों के साथ मुक्ति को प्राप्त हुए।

चम्पापुर से सम्बन्धित अन्य महापुरुष

भगवान् वासुपूज्य के मोक्ष जाने के बाद भी यहाँ अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया। कुन्ती-पुत्र कर्ण ने अपने बाहुबल से चम्पा को प्राप्त कर उस पर शासन किया। श्रीपाल और मैना-सुन्दरी की चर्चा तो जगत्प्रसिद्ध है। भगवान् मुनिसुव्रत ने भी अपने पूर्वजन्म में इसी नगरी में जन्म लेकर शासन किया था। महामुनि सुदर्शन का जन्म भी इसी पावन भूमि पर हुआ था।

राजा दधिवाहन, रानी पद्मावती, उनका पुत्र करकण्डु, सुमुख-वनमाला, धर्मरुचि मुनि, राजा मेघवाहन, सुभग ग्वाला, राजा मघवा, रानी श्रीमति एवं उनकी गुणवती पुत्री रोहिणी, नगर सेठ भानुदत्त-सेठानी सुभद्रा एवं उनका पुत्र चारुदत्त, राजकुमारी मदनावली, रानी अनन्तमती, राजा चन्द्रवाहन-रानी लक्ष्मीवती, नागशर्मा की पुत्री नागश्री एवं चन्दन बाला, राजा श्रेणिक एवं उसका पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) आदि कथा-नायक-नायिकाओं का संबंध भी चम्पापुर से रहा है। इसे हम यूँ भी कह सकते हैं कि जितनी पौराणिक कथाओं का संबंध अयोध्या और चम्पापुरी से है उतना शायद दूसरे क्षेत्रों से नहीं। अगर उपरोक्त सभी महापुरुषों के जीवन-चरित्र का वर्णन किया जाय तो अलग से एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायेगा।

तीर्थंकर वासुपूज्य के बाद भी अन्य तीर्थंकरों ने चम्पापुरी में विहार किया। मल्लिनाथ, मुनि सुव्रतनाथ, नेमिनाथ और महावीर स्वामी ने चम्पापुर में देशना दी थी। आदिपुराण (२५/

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८४) के अनुसार नेमिनाथ ने तथा पार्श्वनाथ चरित्र के अनुसार भगवान् पार्श्वनाथ ने अंग, बंग, कलिंग आदि अनेक देशों में विहार किया। भगवान् ऋषभदेव और नेमिनाथ को छोड़कर बाईस तीर्थंकरों ने बिहार में निर्वाण प्राप्त किया था। जिन दो तीर्थंकरों ने कैलाश और गिरनार पर्वत से निर्वाण पाया था, उन्होंने भी अंग जनपद में विहार किया है। चूँकि चम्पापुरी अंग जनपद की राजधानी थी, इसलिये उनका आगमन यहाँ अवश्य हुआ होगा।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि उन सभी तीर्थंकरों ने चम्पापुरी में विहार किाय होगा, जिन्होंने सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया है। इस प्रकार जैन परम्परा के पूरे चौबीस तीर्थंकरों की कल्याणकारी दिव्य देशना और उनकी चरणरज से चम्पापुरी यथासमय पवित्र एवं धन्य हुई होगी। पौराणिक कथालोक से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् वासुपूज्य के बाद अधिक बार विहार भगवान् महावीर का ही इस नगरी में हुआ। उन्होंने अपने साढ़े बारह साल के कठोर तप साधना काल में तीसरे, चौथे एवं बारहवें वर्ष में चम्पापुरी में विहार किया।

तीर्थंकर महावीर ने देश-देशान्तरों में विहार करते हुए अनेक बार चम्पापुर में पदार्पण किया। यहाँ उन्होंने स्वातिदत्त, दघिवाहन, अजातशत्रु (जितशत्रु), करकण्डु, मंत्री सुबुद्धि, गृहपति कामदेव आदि अनेक श्रेष्ठ पुरुषों को संबोधित किया। अनेक राजाओं ने उनके पादमूल में ही जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके आत्मकल्याण किया।

तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायियों का नाथ सम्प्रदाय भी रहा है। पार्श्वनाथ के उपरान्त अल्पकाल (२५० वर्ष) के बाद ही जन्म लेने के कारण ही भगवान् महावीर को "नाथपुत्त" भी कहा गया। कम से कम बौद्ध साहित्य में तो उन्हें प्रायः "निग्गंथ नाथपुत्त" के नाम से ही उल्लिखित किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह स्वाभाविक लगता है कि पार्श्व और महावीर इन दोनों महापुरुषों के अनुयायियों का प्रमुख केन्द्र होने के कारण ही चम्पापुर के अंचल को नाथनगर नाम मिला होगा। महावीर भगवान के पूर्व संदर्भों में कहीं भी नाथनगर नाम देखने को नहीं मिलता है। चूंकि चम्पापुर महावीर के दस हजार वर्ष बाद भी समृद्ध और ससक्त रहा है। विक्रमशिला विद्यालय भी उसकी ख्याति का अंग रहा है किन्तु वर्तमान में रेलमार्ग का प्रमुख केन्द्र भागलपुर होने के कारण वह अधिक महत्वपूर्ण हो गया और चम्पापुर तथा नाथनगर की महत्ता कम होती गई। पूर्व में ऐसे कई और भी कारण रहे जिससे कि महा-नगरी चम्पापुर आज एक छोटा-सा उपनगर बनकर रह गया है।

卐 卐 卐 卐 卐

चम्पापुर की जैन मूर्ति-कला एवं वास्तु

कालक्रम के आरोह-अवरोह में चम्पापुर के साथ चाहे जो भी हुआ हो, परन्तु उसके धार्मिक महत्त्व में कभी भी कमी नहीं आई। यह जैनों का मान्य एवं प्रसिद्ध तीर्थ रहा है। जो आरती, पूजा, स्तुतियाँ वर्षों से गूँजती आईं वे आज भी गूँजतीं हैं। सैकड़ों भक्त प्रभु के चरणों में प्रतिदिन दीप जलाते हैं। संत और साधक वहाँ के निराकुल वातावरण में अपनी साधना कर स्वात्मज्योति को प्रज्वलित करते हैं। चम्पापुर आज भी रमणीक, पूज्य और प्राचीन नगरी है।

चम्पापुर क्षेत्र का मूल मन्दिर कालधर्म के कारण जीर्ण हुआ और हर बार उसका नवीनीकरण भी होता रहा है। उसमें नये-नये जिनबिम्ब विराजमान होते रहे हैं। आज चम्पापुर में जिनमन्दिरों का दर्शन हमें प्राप्त है, उनका मूल वास्तु लगभग ग्यारह-बारह सौ वर्ष प्राचीन है। विद्यमान मन्दिरों की रचना शैली को देखकर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है। फिर उसके लगभग पाँच-छह वर्षों बाद एक बड़ा और सुविचारित जीर्णोद्धार का कार्य यहाँ हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। वह मुगल शासन का समय था अतः यहाँ के मन्दिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी मुगल शैली से नहीं बच पाये और न ही तात्कालीन श्रेष्ठियों ने इस संबंध में कोई टीका-टिप्पणी ही की। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेश-भूषा और भाषा की तरह निर्माण शैली में भी जैन कभी अनुदार नहीं रहे। उन्होंने महावीर की अनेकान्त प्रणाली को जीवन में भी जिया।

आज चम्पापुर के अधिकांश मंदिर इसी मुगल शैली के उदाहरण हैं। उनमें से कम से कम कुछ मन्दिरों पर गुम्बजों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई देता है। अधिकांश मंदिरों पर जैन कला के परिचायक शिखर ही बने हैं, परन्तु उनमें उभरती हुई सादगी तथा चारों ओर गुमटियों का निर्माण उन्हें मिश्र शैली का सिद्ध करता है।

चम्पापुर का प्रमुख आकर्षण वे दो स्तम्भ भी हैं जिन्हें लगभग दो हजार वर्ष पुराना कहा जाता हैं। उनकी कला, पाषाण और अस्तित्व को देखते हुये बिना ठोस प्रमाण के उन्हें दो हजार वर्ष पुराना सहसा नहीं माना जा सकता है। कहा जाता है कि पहले यह स्तम्भ चार थे किन्तु भूकम्प आदि के कारण दो स्तम्भ लगभग दो सौ साल पूर्व नष्ट हो गये। प्रसन्नता तो इस बात की है कि व्यवस्थापकों की चतुराई एवं देखरेख से दो स्तम्भ आज भी पूर्णतः सुरक्षित हैं। इन स्तम्भों को कई कारणों से, मानस्तम्भ, दीपस्तम्भ एवं ध्वजस्तम्भ की संज्ञा दी जाना सार्थक प्रतीत नहीं होती। भगवान् महावीर के अनाग्रही-उदार दृष्टिकोण का प्रतिफल अवश्य हो सकते हैं अर्थात् मुगल शैली का अनुकरण।

मूल मन्दिर में लगभग दो सौ वर्ष प्राचीन भगवान् वासुपूज्य की लालवर्णी अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा है तथा इस मन्दिर में चार अन्य वेदियाँ भी हैं। इसके पिछले द्वार से निकलने पर दो मन्दिर हैं जिनमें वासुपूज्य भगवान् की एक-एक सुन्दर प्रतिमा प्रतिष्ठित है। तीसरा मन्दिर विशेष महत्व का और प्राचीन जान पढ़ता है। मन्दिर का वास्तु तो चार सौ साल से ज्यादा पुराना नहीं लगता किन्तु उसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठित मूर्तियाँ कितनी प्राचीन हैं यह वे स्वयं बोलतीं हैं।

मूलनायक भगवान् आदिनाथ की पद्मासनबद्ध प्रतिमा मध्य में विराजमान है। कमल की पंखुड़ियों के ऊपर पुष्प-पराग की एक सुन्दर पंक्ति स्पष्ट दिखाई देती है, जिस पर भगवान् को उत्थित पद्मासन में विराजमान दिखाया गया है। कमल पुष्प के नीचे सिंहासन पर मध्य में सुन्दर और प्रवर्तित होता हुआ धर्म चक्र है। चक्र के दोनों ओर दो सुंदर और सुडौल वृषभ अंकित हैं। ऊँचे कांधों वाले बैलों की यह जोड़ी एक ओर धर्म का प्रतीक बनकर धर्मचक्र को महिमा-मण्डित कर रही है, वहीं दूसरी ओर वह प्रतिमा के लांछन का रूप लेकर युगादि प्रभु आदिनाथ के रूप में प्रभु की पहिचान कराती है।

भगवान् के मस्तक के ऊपर केशराशि का मनोहर गुम्फन है। यह इतना आकर्षक बन पड़ा है जैसे स्वयं माता मरुदेवी ने ही नाभिनंदन की सुदीर्घ केशराशि को अपने हाथों से संवारा हो। इस गुम्फन के बाद भी कुछ लटें छूट गईं हैं। सिरोभाग के दोनों ओर पुष्पवर्षा करते विद्याधर अंकित हैं। सबसे नीचे सिंहासन के दोनों कोनों पर मूर्ति की प्रतिष्ठा कराने वाले दम्पति विनय मुद्रा में बैठे है।

मूलनायक भगवान् के दाहिनी ओर वृक्ष पर विराजमान तीर्थंकर प्रतिमा है। वृक्ष के नीचे एक देव दम्पति खड़ा है। संभवतः यह गोमेद यक्ष और अम्बिका की आकृति है तथा उनके साथ पुत्र सुभंकर और प्रियंकर का चित्रण है। हाथ में आम्रमंजरी है। उपर्युक्त तथ्यों से यह प्रतिमा भगवान् नेमिनाथ की है। क्योंकि इस प्रकार की मूर्तियाँ और भी स्थानों पर उपलब्ध होतीं हैं। यह एक ऐसी मूर्ति है जो स्वतंत्र रूप से कोई आख्यान बोलती है।

उस मूर्ति के दाहिनी ओर एक और अत्यन्त मनोज्ञ भगवान् वृषभदेव की प्रतिमा है। इस शिला फलक में चामरधारी देव और दो-दो अन्य आकृतियाँ मात्र हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलनायक के बायीं ओर चौबीसी प्रतिष्ठापित है जिसके मध्य भगवान् अजितनाथ को दिखाया गया है। संभव है यह मूर्ति, प्रथम मूर्ति का अनुशरण करते हुये सम्पूर्ण तीर्थंकरों को दर्शाने के लिये बनाई गई हो, अतः इससे कुछ समय बाद की होना चाहिये।

बायीं ओर ही क्रमांक दो पर पद्मासन मुद्रा में आदिनाथ की मूर्ति है। केश-विन्यास की दृष्टि से इस मूर्ति का भी अपना अलग ही महत्व है। इसका निर्माण काल दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी होना चाहिये। परन्तु मूलनायक और उनके दोनों बाजू में स्थापित मूर्तियाँ कला की दृष्टि से गुप्तोत्तरकाल कीं प्रतीत होतीं हैं। इन्हें छठवीं से आठवीं शताब्दी के मध्य का कहा जा सकता है।

मूलनायक के बायीं ओर की मूर्ति भी आदिनाथ की ही है। मूलनायक की अपेक्षाकृत यह मूर्ति सादी और प्रभावक है। दोनों मूर्तियाँ समकालीन मालूम पड़तीं हैं।

जीवराज पापड़ीवाल द्वारा संवत् १५४८ में प्रतिष्ठापित दो मूर्तियाँ भी यहाँ विराजमान हैं। वेदी पर अन्त में दोनों ओर एक-एक कृष्ण वर्णकी पद्मासनस्थ मूर्तियाँ हैं, इन्हें अधिक प्राचीन नहीं कहा जा सकता है। इसी वेदी में एक खड्गासन प्रतिमा भी है जिसे पाँच सौ वर्ष प्राचीन माना जा सकता है। चम्पापुर की प्राचीन संपदा इस बात का ठोस प्रमाण है कि यहाँ शिल्पकारों की छेनी हमेशा चलती रही है। प्रकृति ने जितना ध्वंस किया, मनुष्य ने उससे ज्यादा निर्माण इस तीर्थ पर किया है।

इस मन्दिर के बाद एक और मन्दिर है जिसमें विदेह क्षेत्रस्थ विद्यमान तीर्थंकर श्री सीमन्धर स्वामी का समवशरण बना हुआ है। इस चैत्यालय से बाहर निकलते ही वह स्तम्भ मिला जिसका ऊपर वर्णन कर चुके हैं। इसके उत्तर में ही दूसरा स्तम्भ भी है। इस स्तम्भ में क्षेत्रपाल की स्थापना कुछ प्राचीन मालूम पड़ती है।

वर्तमान विकास श्रृंखला में यहाँ सर्वप्रथम पूर्वांचल में अद्वितीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६१ (इकसठ) फुट उत्तुंग मानस्तम्भ का निर्माण हुआ है। इसके तीन ओर चौबीस तीर्थंकरों की टोंक हैं। इनके भी पहले इसी क्रम में सर्वप्रथम बाहुबली का जिनालय है। चौबीस टोंको के अन्त में भगवान् वासुपूज्य के शिष्य मंदर गणधर की चरणपादुका है। इसी अहाते में ८.२५ फुट उत्तुंग भगवान् शान्तिनाथ का जिनमन्दिर व ७.२५ फुट खड्गासनस्थ भगवान् महावीर प्रभु का मन्दिर है। काले पाषाण की सात फणों वाले सर्प को सिर पर धारण किये ७.१४ फुट ऊँचे ध्यानस्थ मुद्रा में खड़े भगवान् पार्श्वनाथ का काँच-निर्मित कलात्मक मन्दिर है। इसमें काँच-कला द्वारा पार्श्वनाथ के पूर्व के दस भवों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

यहाँ एक कृत्रिम जल मन्दिर भी बना है जिसके बीचों-बीच दस टन वजन वाली १५.२५ फुट खड्गासन प्रतिमा विशाल कमलासन पर विराजमान है। कुल मिलाकर क्षेत्र पर ४७ छोटी-बड़ी जिनवेदियाँ हैं।

मूल मन्दिर की पश्चिम दिशा में स्वाध्याय भवन में पंचबाल यति की मूर्तियाँ शीघ्र विराजमान होने वाली हैं। पश्चिम बगीचे में शीघ्र ही भगवान नेमिनाथ की मूर्ति, उत्तर बगीचे में चन्द्रप्रभु की मूर्ति एवं पूर्व में कृत्रिम कैलाश पर्वत पर भगवान् आदिनाथ की मूर्त्ति विराजमान होगी। कहते है इसी प्रकार एक बगीचा दक्षिण में भी रहा होगा अथवा है, जिसका देख-रेख के अभाव में कोई ठिकाना नहीं। यहाँ पर श्रीपाल-मैनासुन्दरी उद्यान भी अपने आप में सुन्दर है। यहाँ के दर्शन करने पर और भी कई विशेषतायें अनुभव में आती हैं।

चातुर्मास स्थापन एवं विहार

विभिन्न विशेषताओं से युक्त इस चम्पापुर नगरी में आचार्य श्री सन्मतिसागरजी ने अष्टाह्निका के आठ उपवास के मध्य संघ सहित चातुर्मास स्थापन किया। चातुर्मास स्थापना कलश संजय झांझरी-शिल्पा झांझरी ने स्थापित किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चातुर्मास के दौरान तीन-चार बड़े-बड़े विधान हुये जिनमें सैकड़ों इंद्र-इंद्रानियों सहित कई श्रावकों ने भाग लिया। आचार्य श्री ने दशलक्षण के दस एवं दूसरी अष्टाह्निका के आठ उपवास तो किये ही साथ ही पूरे चातुर्मास एकान्तर-दुकान्तर भी करते रहे। यहाँ आचार्यश्री के कई दैवीय चमत्कार हुये। जिनसे प्रभावित होकर सम्पूर्ण समाज पुनः अति धर्मनिष्ठ हुई। १७-६-९८ से १२-११-९८ तक संघ चम्पापुर में रहा। इसके बाद समाज के अत्यन्त अनुरोध-विनय करने तथा अथक प्रयत्नों के बाद आचार्य श्री ने भागलपुर जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी। १३-११-९८ को चम्पापुर से पूर्व में तीन-चार किमी० दूर स्थित भागलपुर के लिये विहार हुआ।

दो

अंग-बंग और मगध के अधिपति राजा श्रेणिक ने जिस चम्पापुर को जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का केन्द्र चुना था। वहाँ पाँच माह तक धर्म प्रभावना कर संघ भागलपुर आ गया। भागलपुर आने के बाद भी वहाँ हवामहल जयपुर की शैली में निर्मित मुख्य द्वार और वहाँ अंदरुनी हिस्सों में चित्रित भगवान् नेमिनाथ, महावीर, सेठ सुदर्शन आदि के सैकड़ों तैलनिर्मित चित्रोंका चिन्तन चलता रहा। यहाँ का बीसपंथी मन्दिर भी अपने आप में अनूठा है, चरणों एवं मूर्तियों की प्राचीनता के कारण।

भागलपुर में कोतवाली चौक के पास दिगम्बर जैन मन्दिर एवं धर्मशाला है। मन्दिर में कुछ प्रतिमायें एक हजार वर्ष से भी प्राचीन हैं। चम्पापुर की कुषाणकालीन, गुप्तकालीन एवं पालयुगीन जैसी ये प्रतिमायें शोध का विषय हैं।

आचार्य श्री के ससंघ सान्निध्य में यहाँ एक शिविर का आयोजन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया गया। शिविर के मध्य ही मुनिश्री अमरसेन एवं शूरसेन महाराज की साधनापूर्वक समाधि सिद्ध हुई।

हुआ यूँ कि मुनिश्री अमरसेन, मुनि समन्वयसागर, मुनि समयसागर, आर्यिका कैलाशमति, आर्यिका सम्मेदशिखरमति एवं क्षुल्लक वीरनन्दी सभी सम्मेदशिखर से चम्पापुर एवं आचार्य श्री के दर्शन के लिये चले थे। रास्ते में मुनिश्री अमरसेन जी महाराज का स्वास्य खराब हो गया। फिर भी प्रभु-भक्ति एवं गुरु-भक्ति से वे चम्पापुर आ पहुँचे। संघ के साधुओं ने आगत सभी साधुओं की वैयावृत्ति आदि की। आज भी वह अस्वस्थ थे।

दूसरे दिन संघ ने भागलपुर के लिये विहार किया तथा वे वंदना के दृष्टिकोण से रुक गये। लेकिन इस दिन उनका आहार ठीक नहीं हो पाया तथा अस्वस्थता ज्यादा बढ़ गई, अतः श्रावक उन्हें आचार्य श्री के समक्ष भागलपुर ले आये। उन्होंनें समाधि के लिये आज्ञा माँगी तो आचार्य श्री ने कहा—आज सोच लो कल सुबह चर्चा करेंगे।

सुबह उन्होंने पुनः वही बात कही—तो आचार्य श्री ने संघ से एवं श्रावक प्रमुखों से चर्चा कर एक माह की सल्लेखना देकर उस दिन उपवास के लिये कहकर उनकी परिचर्या के लिये साधुसंघ को नियुक्त कर दिया तथा सावधान रहने को कहा। आचार्य श्री के संकेतानुसार रात्रि को ही महामंत्र एवं संबोधन सुनते हुये उन्होंने स्वतः पद्मासन लगाई तथा आत्म ध्यानपूर्वक पुद्गल शरीर को छोड़ दिया। उनके एक घण्टे बाद ही क्षुल्लक जी का भी उर्ध्व श्वांस जारी हो गया और महामंत्र सुनते हुये उन्होंने भी प्राण विसर्जित किये। प्रातः काल एक साथ दो विमानों को हजारों जन समुदाय की उपस्थिति में चम्पापुर ले जाया गया। जहाँ पर पार्थिव शरीर का दहन किया गया। क्षुल्लक जी अन्त में मुनि बन गये थे। मुनिद्वय की समाधि साधना से जिनके मन में साधुओं के प्रति संशय था उनके मन भी धुल गये। वहीं पर २१ नवम्बर ९८ को आचार्य श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिसागर जी महाराज (अकंलीकर) का ५६वाँ दीक्षा दिवस महोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया गया। इस कार्यक्रम में पाँच विद्वानों, कई पत्रकारों और कई समाज सेवियों सहित सैकड़ों लोगों ने भाग लियां। मुनि महाराजों के केशलोंच भी हुये। कई वक्ताओं ने ४-५ दिन पूर्व हुई सल्लेखनाओं, संयम-साधना और आचार्य श्री आदिसागरजी के जीवन चक्र पर प्रकाश डालते हुये अपने विचार रखे।

२२ तारीख को यहाँ से पुनः चम्पापुर पहुँचे जहाँ निषधिकायों की वंदना की। आहार चर्या के बाद सुल्तानगंज की ओर विहार हो गया। रात्रि-विश्राम कर दूसरे दिन सुल्तानगंज पहुँचे जहाँ चर्या हुई। यहाँ एक दिगम्बर जैन मन्दिर धर्मशाला एवं समाज के कुछ घर हैं। यह स्थान चम्पापुर से २२-२३ किमी० से कम ही रहा होगा। संघ का विहार, नरवाली (राज०), आरा (विहार), भागलपुर एवं जयपुर के श्रावक पटना की ओर करवा रहे थे। अतः यहाँ एक दिन रुककर दूसरे दिन विहार किया।

मुंगेर यहाँ से ४०-४१ किमी० है अतः दो आहार रास्ते में हुए फिर मुँगेर पहुँचे। यहाँ एक दिगम्बर जैन मन्दिर, विशाल धर्मशाला एवं जैन बँधुओं के घर हैं। कहते हैं कि यहाँ आज से ३०-३५ वर्ष पहले आचार्य विमलसागरजी महाराज ससंघ आये थे उनके बाद कोई भी आचार्य संघ मुँगेर नहीं पहुँचा। इसके दो कारण प्रमुख हैं—प्रथम तो चम्पापुर से सीधे राजगृही आदि क्षेत्र कमं दूरी पर पड़ते हैं। द्वितीय यह रास्ता अनैतिक और अराजक तत्त्वों की बस्ती है। अतः भय रहता है कि कोई दुर्घटना न घट जाये।

मुँगेर में दो दिन प्रवास हुआ। तदनन्तर ३० तारीख को सुन्दरपुर में रात्रि विश्राम हुआ। मोहकपुर, बालगूडर, मराची, मेकरेडी (लगभग ८०-८५ किमी) चलकर हम सभी बाढ़ पहुँचे।

卐 卐 卐 卐 卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाढ़नगर का जिन मन्दिर : व्यवस्था अपेक्षित

रास्ते में तो विभिन्न छोटी-छोटी घटनायें घटीं ही पर यहाँ प्रवेश के समय एक दर्दनाक घटना घटी । हुआ यूँ कि हम साधु करीब पचास साठ कदम ही दूर होंगे कि देखा सामने से एक ट्रक आ रहा है । ट्रक आते हुए देखा । न जाने कहाँ से बराबर में साईकिल चलाते हुए दो साईकिल वाले भी उसी दिशा से आ रहे थे । अचानक क्या हुआ कि एक साईकिल को दूसरी साईकिल वाले का थोड़ा सा धक्का लगा कि वह दाई तरफ से ट्रक के नीचे बीच में जा गिरा और एक मिनिट से भी कम समय में उसके प्राण पखेरू उड़ गये । ट्रक की स्पीड पैदल चलने वाले आदमी से भी कम थी । जहाँ दुर्घटना घटी, उस स्थान से मुश्किल से दस-बारह कदम पर ही ट्रक वाले ने अपना ट्रक रोक लिया । इस घटना के कई प्रत्यक्षदर्शी थे अत: उस समय तो ट्रक वाले के साथ दुर्व्यवहार न हुआ, पर बाद में क्या हुआ इसका पता नहीं ।

卐 卐 卐 卐 卐

संसार की निस्सारता

मात्र पच्चीस-तीस कदमों की दूरी पर हो रही इस दुर्घटना को देख हम साधु दंग रह गये । मौत इतने धीमें कदमों से भी चलती है इसका भी अन्दाजा लगा । संसार की अनित्यता के बारे में क्या कहा जाये । किसी को कुछ पता नहीं कि कब क्या घटना घट जाये और इस शरीर को छोड़ना पड़े । कवि भूधरदास ने कहा है—

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार ।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार ।।

कुछ पंक्तियाँ मंगतराय की भी हैं—

काल सिंह ने मृग चेतन को, घेरा भव वन में ।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यंत्र मंत्र सेना धन संपति, राज काज छूटे ।
वश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे ।।

कुछ पंक्तियाँ निश्चय की पोषक—

जिंदगी इक पल कभी, कोई बढ़ा सकता नहीं ।
रस रसायन सुत सुभट कोई बचा सकता नहीं ।।
सत्यार्थ है बस बात यह, कुछ भी कहो व्यवहार में ।
जीवन मरण अशरण-शरण कोई नहीं संसार में ।।

मैंने ''पथिक'' में लिखा है–''मृत्यु एक अनिवार्य सत्य हैं जिसे नकारा जा सकता, कोई कितना ही झूठ का प्रेमी क्यों न हो जिंदगी भर झूठ बोलने के बाद भी उसे एक सत्य को अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, जो होगा जीवन का अन्तिम समय ।''

कब मौत हो जायेगी कोई ठिकाना नहीं । क्यों न हम ऐसा कुछ कर लें जिससे पुनः कभी मौत का सामना ही न करना पड़े । और वह रास्ता होगा व्रत संयम धारण कर तप कर मुक्ति प्राप्त करना ।

"पथिक" कुछ और भी कहता है—ऐसा तो प्रत्येक माता-पिता करते हैं कि अगर सड़क पर से कोई अर्थी निकलती है तो अपने बच्चों को घर के अन्दर कर लेते हैं, शायद वे सोचते हैं या तो बच्चा डर जायेगा या फिर भगवान् आदिनाथ या बुद्ध की तरह वैरागी हो जायेगा । मैं कहता हूँ बच्चों को अर्थी देखने का पूरा अधिकार दिया जाये ताकि उनके कोमल मन पर संसार से ग्लानि के चिह्न उभरे और वे अपने भविष्य का सही निर्णय कर सकें ।

....और भी बहुत कुछ चिन्तन करते हुये हम लोग यहाँ स्थित प्राचीन जैन मन्दिर पहुँचे । मन्दिर का दर्शन कर जितनी हार्दिक प्रसन्नता हुई, उतनी ही वेदना भी हुई, मंदिर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था और अव्यवस्था को देखकर । मंदिर का वास्तु लगभग चार-पाँच सौ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ष पुराना मालूम पड़ता है। वर्तमान में यहाँ जैन समाज का मात्र एक परिवार है और वह भी "छोटा परिवार, सुखी परिवार"। अतः उन्हें दर्शन-पूजन की फुर्सत ही कहाँ ? फिर उनके घर में भी तो एक चैत्यालय है। खैर.... परिवार है धार्मिक। उन्होंने संघ की व्यवस्था में पूरा सहयोग किया।

तो मैं मन्दिर की बात कह रहा था। मंदिर जीर्ण-शीर्ण हो रहा है। कोई साज-सज्जा भी नहीं है। पूजन-अर्चन की भी कोई खास व्यवस्था नहीं है, एक ब्राह्मण जरूर भगवान् को स्नान करा देता होगा। वेदी बहुत लम्बी-चौड़ी और उँची है। जिस पर ३ इंच से लगाकर ३ फुट तक की लगभग ८०-८५ मूर्तियाँ है। इसके बाजू वाली वेदी में एक चतुर्मुखी प्रतिमा है, जिसके इर्द-गिर्द २४-२५ पद्मावती देवी सहित पार्श्वनाथ भगवान् या चौबीसी की मूर्तियाँ हैं। मूर्तियाँ बहुत मनोज्ञ एवं आकर्षक हैं। मूर्तियों की अव्यवस्था देखकर मन रो पड़ता है, साथ ही यह कल्पना होती है कि जैसे यहाँ मूर्तियों का भंडारण किया गया हो।

प्रशस्तियों एवं चर्चाओं के माध्यम से पता चला कि यह मूर्तियाँ मुगलकालीन होना चाहिये। बात ऐसी है कि बाढ़नगर के निकट ही गंगानदी बहती है। बुजुर्ग कहते हैं कि हमारे पूर्वजों ने गंगा नदी में से यह मूर्तियाँ प्राप्त कीं। यह नाव में भरीं हुईं कहीं से बहतीं हुईं आ रहीं थीं। शायद मुगलों के आंतक से ही किन्हीं धर्मात्माओं ने जिनायतनों की रक्षा करने के लिये उन्हें नाव में रखकर बहा दिया होगा। इस बात का पता लगना कठिन है कि मूर्तियाँ कहाँ से बहाईं गईं, और यह शोध का विषय भी है।

इस मन्दिर से लगभग दो सौ कदम पर एक और विशाल जिन मंदिर है, जिसमें ४-४ फुट जितनी विशाल तीन प्रतिमायें तथा ७-८ अन्य प्रतिमायें हैं। मूलनायक शायद पार्श्वनाथजी हैं। इस मन्दिर की व्यवस्था तो उस मन्दिर से ज्यादा ही खराब है। वहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ब्राह्मण पुजारी तो कभी भगवान् को नहला भी देता होगा, पर यहाँ का ब्राह्मण पुजारी पानी भी नहीं डालता होगा। ऐसा मूर्तियों पर लगे चूहों का मल-मूत्र बताता है। वह वृद्ध ब्राह्मण मन्दिर की जगह में ही रहता है तथा वहाँ खेती किसानी संबंधी सामान भी रखता है।

तीसरा है गृह चैत्यालय, जो यहाँ रह रहे परिवार का है अतः उसकी व्यवस्थाएँ ठीक हैं। यहाँ के मन्दिरों को देखने से लगता है जैसे ये लावारिस हों? बड़ा दुःख होता जिनचैत्य और प्राचीन जिन चैत्यालयों की ऐसी दशा देखकर। कहने की आवश्यकता नहीं कि सम्पूर्ण समाज, श्रेष्ठियों एवं कर्णधारों का इस ओर ध्यान जाना आवश्यक है।

यहाँ की कुछ सभ्यता एवं सांस्कृतिक चिह्नों से अनुमान लगता है कि कुछ वर्षों पूर्व यहाँ जैनों की अच्छी आबादी रही है। आजीविका आदि के कारण से व्यवसायी वैश्यों ने स्थानान्तरण किया होगा। नगर के नाम से प्रतीत होता है कि गंगा का तट नीचा होने के कारण पूर्वकाल में बाढ़ें आतीं रहीं होगीं, अतः इस नगर को ही बाढ़ नाम दे दिया गया होगा।

卐 卐 卐 卐 卐

दिगम्बर मुनि एवं उनकी चर्या

जिनार्चना कर संघ ने यहाँ आहार चर्या की। मेरा आज प्रारम्भ में ही अंतराय (विघ्न) हो गया, अतः शीघ्र वापिस आ गया। मैं आकर बैठा ही था कि बहुत सारी भीड़ इकट्ठी हो गई। उनमें से एक व्यक्ति (जो कुछ चतुर मालूम पड़ रहा था) बोला—कुत्र गच्छतः।

मैंने उत्तर दिया—वाक्योऽयं युक्तं नास्ति।

मेरी बात सुनकर झिझककर वह कुछ विनम्र शब्दों में बोला—बाबा! आप लोग कहाँ से आये हैं और कहाँ जा रहे हैं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैंने उत्तर दिया—अभी तो चम्पापुर (नाथनगर) से आ रहे हैं तथा पाटलिपुत्र (पटना) जा रहे हैं।

: आपका स्थायी निवास कहाँ है ?

: जैन साधुओं का कोई स्थान स्थायी नहीं होता। वे तो हमेशा यत्र-तत्र भ्रमण करते हुये आत्म-साधना करते हैं।

: आप लोग नग्न क्यों रहते हैं ?

: सच्ची साधना और ध्यान के लिये नग्नता परम आवश्यक है। किंचित मात्र भी परिग्रह चिंता और दुःख का कारण होता है। अगर सच्चे सुख और ध्यान को पाना है तो निस्परिग्रही होना अत्यन्त आवश्यक है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का पूर्णरूपेण पालन बिना नग्नता के तीन काल में भी नहीं हो सकता है।

दिगम्बर मुनियों की नग्नता में विकार नहीं अपितु सत्य का आकार होता है। वे जानते हैं कि मानव नंगा पैदा हुआ था और नंगा ही जायेगा फिर बीच में वस्त्र क्यों ? वस्त्र तो वासना को छिपाने के लिये पहने जाते हैं। मुनि निर्विकार, समता-मूर्ति, ज्ञानी-ध्यानी एवं इंद्रियजयी होते हैं, उन्हें वस्त्रों की क्या आवश्यकता ? मेरा उत्तर था। मैंने वह कहानी भी कही जिससे एक मुनि अपने भक्तों के कहने पर लंगोटी रख लेता है। लंगोटी चूहे कुतरते हैं, तो बिल्ली पालता है, बिल्ली को दूध की जरूरत होती है तो गाय पालता है और गाय की तथा स्वयं की पेट पूर्ति के लिये खेती करता है। कुल मिलाकर उसका जीवन नरक बन जाता है। इसलिये दिगंबरत्व पूर्णरूपेण युक्त-सत्य और पूज्य है।

उसके अन्य प्रश्नों के उत्तर में मैंने कहा—चौबीस घण्टे में हमेशा एक ही बार भोजन लेते हैं, कई बार उपवास भी करते हैं। जमीन या चटाई पर सोते हैं। प्रत्येक मौसम में नग्न ही रहते हैं, कंबल आदि का उपयोग नहीं करते। अपने हाथों से केशों को उखाड़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फेंकते हैं, जिस दिन केशों का उपाड़न करते हैं उस दिन उपवास भी रखते हैं। कभी-भी स्नान नहीं करते, फिर भी तपस्या के कारण स्वच्छ व सुन्दर दिखते हैं। खड़े होकर के हाथ की अंजुली बनाकर शुद्ध भोजन ही करते हैं। शुद्ध भोजन या सही विधि (प्रतिज्ञा) न मिले तो उपवास करते हैं। विघ्न आने पर भी आहार छोड़ देते है आदि बहुत-सी बातें कही।

चर्या के बाद संघ ने यही सामायिक (ध्यान) की तदुपरांत संघ ने आगे के लिये विहार कर दिया।

卐 卐 卐 卐 卐

चरैवेति चरैवेति

डग-मग डग-मग नैया चलती, लगता मुझको डर है।
कहाँ-किधर टकरा जाये, यह मुझको नहीं खबर है।।
भक्ति कर चलता जाता हूँ, गीत तुम्हारे गाऊँ।
हे प्रभुवर निज अंतस् मन में, यों उल्लास जगाऊँ।।

"पथिक की प्रार्थना" गीत की पंक्तियाँ वास्तव में आज की घटना पर सटीक थीं। प्रातःकाल से अब तक वहाँ पर भीड़ लगी हुई थी। पूरी सड़क बंद थी। अतः हम साधुओं को किसी दूसरे रास्ते से सड़क तक लाया गया। ८-९ किमी० चलने के बाद एक गाँव में रात्रि विश्राम किया।

पहले भी शराबी लोगों के कारण छोटी-मोटी घटनायें घटीं। आज भी एक घटना घटी—स्कूल में जाकर ठहरे थे। ठंड की रात थी अतः चिटाई में दुबके हुये सामायिक कर रहे थे। बाहर कोई शराबी कह रहा था—अरे....ए....ए....साले नंगे रहते हैं और अपने को बाबा कहते हैं।....क्या करना, क्या करनां....अपन से तो भौत अच्छे हैं। अरे....बहुत तपस्वी होते हैं, जय हो बाबा....जय हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रात्रि बीती सुबह हुई और संघ अपनी नित्य-नैमित्तिक क्रियायें करके अगले पड़ाव बख्तियारपुर की ओर चल दिया जो बाढ़ से २० किमी० है। बख्तियारपुर के एक सज्जन ने संघ को अपने कारखाने में रुकवाया तथा यहीं चर्या हुई।

उन महानुभाव के बोल-चाल से तथा सभ्यता संस्कृति से ऐसा महसूस हो रहा था जैसे उनके वंशज जैन रहे होंगे। उनकी जाति उन्होंने जायसवाल बताई, किन्तु धर्म और तीर्थंकरों के बारे में उन्हें कुछ भी जानकारी नहीं। हाँ ! वे ऋषभ मंत्र जिसे लोग गायत्री मंत्र कहते हैं, उसका जाप करते हैं। चर्या के बाद सामायिक उनके मकान की छत पर की। इस धार्मिक परिवार ने खूब भक्ति से साधुओं की सेवा की।

ऐसे परिवार बिहार के नगरों में कितने ही मिलेंगे जो जाने अनजाने जैनधर्म का पालन तो करते हैं, पर जैन धर्म, देव, शास्त्र और गुरु के बारे मैं जानते कुछ भी नहीं। हाँ उनका संयोग होने पर संस्कारवश श्रद्धा-भक्ति जरूर प्रकट हो जाती है। ऐसे परिवार या सराक समाज के सुधार के लिये उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी जैसे कई साधुओं की आवश्यकता है।

उन्होंने सपरिवार अश्रुपूरित नयनों से संघ को विदा किया। रात्रि विश्राम फतुहा में होना था लेकिन कई कारणों वश न हो सका। उनमें एक प्रमुख कारण था पाँच हत्यायें। बिहार सरकार की अव्यवस्था या गुण्डाराज के चलते एक ही दिन में यहाँ पाँच हत्यायें हुईं, जिस कारण संघ को फतुहा को काटकर जाने वाली सड़क पर स्थित एक छोटे गाँव में रुकाया गया। जहाँ कुछ नीची जाति के शराबी लोगों ने विभिन्न प्रकार की चर्चायें कीं, जिन्हें बुद्धिमानी से निपटा दिया गया। भागलपुर के विमल जैन ने किसी तरह से उन्हें वहाँ से बाहर कर कहा—बाबा का मौन हो गया है, सुबह बात करना; वे चले गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रातःकाल कुछ ज्यादा चलना था क्योंकि रास्ता पलट गया था। कबीर मठ यहाँ से लगभग १२-१३ किमी० था, जहाँ चर्या होना थी। कदम-कदम रास्ते का छोटा करते हुए हम साधु जब कबीर मठ पहुँचे तो वहाँ के कबीरपंथी साधुओं ने ससम्मान स्थान दिया तथा नमस्कार आदि भी किया।

यहाँ पर पटना के शांतिलाल गंगवाल, रतनलाल गंगवाल, अशोक बड़जात्या, नन्दलाल पहाड़िया, महेन्द्र जैन, अजित गंगवाल, अशोक छावड़ा आदि कई धर्मप्रेमी महानुभावों ने आकर पटना पधारने हेतु श्रीफल अर्पित किया। गुलजार बाग यहाँ से लगभग १८-१९ किमी० था।

सामायिक आदि के बाद विहार कर आचार्य संघ रात्रि स्थान की ओर जा रहा था। रास्ते में एक हिन्दु साधु मिला जिसने आचार्य श्री से अपनी कुटिया में रुकने के लिये बारम्बार निवेदन किया पर आचार्य श्री न रुके। रात्रि विश्राम जहाँ होना था वह एक स्कूल था। रात्रि निकट थी अतः कुछ तीव्र गति से चलकर यहाँ पहुँचे और रात्रिक क्रियायें कीं।

प्रातःकाल गुलजारबाग क्षेत्र की ओर विहार किया, जहाँ से भगवान् सुदर्शन ने निर्वाण प्राप्त किया। आज दिसंबर की आठ तारीख थी। पटना में लालू यादव की पत्नी मुख्यमंत्री राबड़ी देवी ने "खबरदार रैली" आयोजित की थी, अतः संघ को भीड़भाड़ से दिक्कत न हो इसलिये सावधानी से ले जाया गया। वैसे कल कुछ समस्यायें इस रैली के प्रचारकों से उस समय आ सकती थीं जब हमलोग किसी नाले का पुल पार कर रहे थे और उनकी तीन-चार जीप गाड़ियाँ तेज स्पीड में गुण्डा चाल में निकलीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन

खैर....बड़ी आसानी उस स्कूल से आचार्य श्री ससंघ गुलजार बाग पहुँचे, यह पटना का ही एक अंचल है। यहाँ एक छोटी-सी धर्मशाला एवं मंदिर है। मंदिर में मूलनायक भगवान् नेमिनाथ की कृष्ण वर्णी मनोहर प्रतिमा है। वेदी में लगभग २४-२५ प्रतिमायें हैं जिनमें सुदर्शन स्वामी की भी एक प्रतिमा है। यहाँ के दर्शन कर मन जितना प्रसन्न हुआ उतना ही दुःखी हुआ था पटना सिटी के मंदिरों की दुर्दशा देखकर।

राजधानी में प्रवेश करते समय जो मन्दिर मिला। (शायद कचौड़ी गली वाला मन्दिर) जिसकी दुर्दशा एक गृहस्थ के टूटे मकान से भी ज्यादा खराब थी। चार लोहे की चद्दरों के नीचे भगवान् पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों की लगभग चालीस मूर्तियाँ विराजमान थीं। शासन देवी-देवता भी उपेक्षित पड़े थे। समाज के प्रमुखों का कहना है कि किसी परिवार ने इस मन्दिर पर कब्जा कर लिया है। वह मन्दिर में ही रहता है तथा जीर्णोद्धार भी नहीं होने देता। मैं कहता हूँ क्या यहाँ के सौ परिवार अस्तित्व विहीन हैं जो एक परिवार से भी मन्दिर की सुरक्षा नहीं कर पा रहे हैं। काली-बीबी गली वाला मन्दिर कुछ ठीक है। पंचायती मन्दिर की दशा भी कोई ज्यादा अच्छी नहीं है। एक मंदिर के और दर्शन हुये। कुल मिलाकर यहाँ अब तक कोई ऐसा विशाल मन्दिर या धर्मशाला नहीं है जिससे कहा जा सके कि पटना में जैन समाज का प्रभुत्व रहा था। या गरिमामयी अस्तित्व है।

卐 卐 卐 卐 卐

सुदर्शन स्वामी ब्रह्मचर्य के अवतार

भगवान् नेमिनाथ मन्दिर से कमलद्रह (तालाब) लगभग दो सौ कदम पर है। रेलवे पटरी पार कर भगवान् सुदर्शन के चरणों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वंदना की। भगवान् सुदर्शन के संबंध में प्रसंग वश उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

पावन सलिला गंगा नदी के तट पर स्थित पटना प्राचीन काल से ही जैन धर्मका एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ पर अनेक जैन मुनियों ने तप साधना की तथा जैन धर्म का प्रचार प्रसार किया। बिहार की राजधानी पटना में ही गुलजार बाग नामक स्थान है। यह गुलजार बाग रेलवे स्टेशन के नाम से जाना जाता है। रेलवे स्टेशन से ठीक सटे दक्षिण कई विशाल कमल सरोवरों के बीच एक टीले पर महामुनि सुदर्शन स्वामी की निर्वाण स्थली है।

पौराणिक अनुश्रुतियों से ज्ञात होता है कि महामुनि सुदर्शन का जन्म चम्पापुर (भागलपुर) के नगर सेठ वृषभदत्त के यहाँ हुआ था। बालक सुदर्शन बड़े हुये तो उनका मनोहर रूप ऐसा था कि जो भी देखता ठगा-सा रह जाता। वे कामदेव से भी सुन्दर थे। अपने सौंदर्य के कारण उन्हें कई बार ब्रह्मचर्य व्रत की परीक्षा देनी पड़ी। जब सुदर्शन यौवन अवस्था को प्राप्त हुये तो उनका विवाह मनोरमा से कर दिया गया। उनके पिता वृषभदत्त ने सुदर्शन को व्यापार आदि का भार सौंपकर दीक्षा ले ली। सुदर्शन सेठ प्रत्येक पक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी को श्मशान में जाकर ध्यान लगाते थे।

एक दिन तात्कालीन अंग देश की राजधानी चम्पापुर के नरेश दधिवाहन अपनी महारानी अभया को साथ ले वन विहार को गये। उनके साथ श्रेष्ठी सुदर्शन मंत्रीगण एवं पुरजन-परिजन आदि भी गये। सुदर्शन को देखकर रानी अभया का मन चंचल हो गया। जब सभी वन विहार से लौटे तो अभया अपने कक्ष में जाकर काम से पीड़ित होकर पलंग पर पड़ गई। अपनी दाई माँ को अत्यन्त विश्वस्त एवं अन्तरंग समझकर महारानी अभया बोली—सुदर्शन को देखकर मैं उसके ऊपर मोहित हो गयी हूँ, अब मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती। उसे मुझसे किसी उपाय से मिला दो। दाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने उसे समझाया, किन्तु जब वह न मानी तो एक अष्टमी की रात को जब सुदर्शन श्मशान में ध्यान मग्न थे तो उन्हें किसी षड्यंत्र से प्रयत्न पूर्वक ले आई और उसे महारानी के कक्ष में पहुँचा दिया ।

सुदर्शन को देखकर रानी बड़ी प्रसन्न हुई और काम से पीड़ित होकर वह सुदर्शन से रति दान की प्रार्थना करने लगी । सुदर्शन तब भी ध्यान मग्न रहे । रानी कामान्ध होकर नाना प्रकार की कुचेष्टायें करने लगी । जब दृढ़ शीलव्रती की शिला से रानी के सभी शस्त्र टकराकर चूर होगये तो वह खीज और क्रोध से भर उठी । उसे अपनी प्रतिष्ठा बचाने की चिंता हुई । तब रानी ने स्वयं अपने कपड़े फाड़कर अपने नाखूनों से शरीर क्षत-विक्षत कर लिया, बाल बिखेर लिये और कठोर वाणी में चिल्लाने लगी कि सुदर्शन ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया ।

तत्पश्चात् रानी की बात मानकर राजा ने सुदर्शन को सूली पर चढ़ाने का आदेश दे दिया । जब उन्हें सूली पर चढ़ाया जाने लगा तब नगर देवता (यक्ष) ने धर्मात्मा सुदर्शन की न केवल रक्षा कि प्रत्युत् सूली को ही सिंहासन बना दिया और उनके मस्तक काटने के लिये चलाई गई तलवार को भी फूल माला बना दिया तथा उन महान् धर्मात्मा की पूजा वंदना आदि की ।

उन्होंने यह उपसर्ग आने पर प्रतिज्ञा की थी कि अगर यह उपसर्ग टल गया तो मैं मुनि बन जाऊँगा । संयोगवश तभी कहीं से विमल वाहन नामक मुनि आ गये । सुदर्शन ने उनसे मुनि दीक्षा ग्रहण कर दिगम्बर मुनि का पद धारण कर लिया । और सेठ सुदर्शन अब महामुनि सुदर्शन हो गये ।

इस घटना से भयभीत होकर एवं लोक लाज के कारण रानी ने आत्महत्या कर ली और मरकर व्यन्तरी (भूतनी) बनी । दुष्टा दाई भी वहाँ से भागकर तात्कालीन बंग की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) में देवदत्ता नामक वेश्या के यहाँ रहने लगी । सुदर्शन मुनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रत लेकर दिगम्बर वेश में नगर-नगर ग्राम-ग्राम पैदल विहार करते हुये पाटलिपुत्र पहुँचे। उपरोक्त दाई ने पाटलिपुत्र में विहार करते हुये सुदर्शन मुनि को देख लिया। वह देवदत्ता वेश्या से जाकर बोली— किसी भी तरह सुदर्शन को साधना च्युत करो।

इस पर देवदत्ता वेश्या बोली—'मैं देखती हूँ कि कितना बड़ा ब्रह्मचारी है।' देवदत्ता ने आहारचर्या के बहाने मुनिराज को बुला लिया और तीन दिन तक बंद कमरे में उन पर घोर उपद्रव किया फिर भी वे धीर--वीर मुनि अपनी साधना से किंचित मात्र भी डिगे नहीं। तब देवदत्ता भयभीत होकर उन्हें श्मशान में छोड़ आई। फिर सात दिन तक महामुनि के ऊपर अभया व्यन्तरी ने भयानक उपसर्ग किया; किन्तु ध्यान मग्न मुनि सुदर्शन कठोर कष्ट सहन की कसौटी पर खरे उतरे। उनका ध्यान इतना भव्य था कि सातवें दिन उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। तत्पश्चात् पौष शुक्ला पंचमी को वर्तमान "कमलद्रह' जी नामक स्थान से उन्हें परमपद निर्वाण की प्राप्ति हुई।

वर्तमान में यहाँ पावापुरी जैसा एक सुन्दर जल मंदिर है। जिसमें भगवान् सुदर्शन के चरण चिह्न स्थापित हैं। पास ही एक जिनमन्दिर युक्त धर्मशाला है। जहाँ प० पू० तपस्वी सम्राट् आचार्य श्री सन्मतिसागर जी दिनांक ८.१२.९८ से १३.१.९९ तक संघ सहित रुके। प्रत्येक वर्ष की पौष शुक्ला पंचमी को सम्पूर्ण जैन समाज बहुत बड़े रूप में भगवान् सुदर्शन स्वामी का निर्वाण महोत्सव मनाती है। जिनेन्द्र भक्तों के लिये यह एक वंदनीय एवं दर्शनीय स्थल है।

卐 卐 卐 卐 卐

मुनि संवेगसागर का समाधि मरण

यहाँ आचार्य संघ के सान्निध्य में छोटे-बड़े कई कार्यक्रम आयोजित हुए। जिनमें सुदर्शन स्वामी का निर्वाण महोत्सव दिवस और आचार्य आदिसागर जी तथा आचार्य महावीर कीर्ति जी चरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापन दिवस स्मरणीय है। आचार्य महावीर कीर्ति जी जन्म-जयंती के उपलक्ष्य में यहाँ चरण विराजमान हुये।

चम्पापुर सिद्धक्षेत्र की तरह इस सिद्धक्षेत्र से भी १३ तारीख को ही पटना के लिये प्रस्थान हुआ। उस समय मुनि अमर सेन अस्वस्थ हुये चम्पापुर में और समाधि १६ नवम्बर को हुई भागलपुर में। उसी तरह मुनिश्री संवेगसागर जी अस्वस्थ हुये गुलजारबाग में और समाधि हुयी १४ जनवरी को पटना में। उन्हें भी श्रावक आचार्य श्री के पास लाये थे और इन्हें भी; सिर्फ अंतर दहन क्रिया का रहा। उनका पार्थिव शरीर चम्पापुर में अग्नि को समर्पित किया गया तथा इनका, कुछ मतभेदों के कारण गुलजारबाग न ले जाया गया, जैन भवन में ही अंत्येष्टि हुई।

मुनि संवेगसागर जी का जन्म श्री निहाल चंद्र एवं हमीरी बाई के यहाँ चैत वदी सप्तमी संवत् १९७९ में हुआ था। उनका जन्म नाम भगवानदास रखा गया था। उन्होंने कक्षा-आठवीं तक शिक्षा प्राप्त कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। जन्म काल से शान्त एवं धार्मिक प्रकृति के थे। व्यापारिक क्षेत्र में भी कभी भी अनैतिक कार्य नहीं किये। पहले जो आप अपनी जन्म नगरी बोरी जि० बाँसवाड़ा में ही रहे बाद में आनन्दपुरी में रहने लगे। अपनी ढलती वय में आप आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज के तप और ज्ञान से प्रभावित होकर उनके भक्त बन गये। आपके शरीर में कई बीमारियाँ थीं। आचार्यश्री ने आप से कहा—आप दीक्षा लो तो सब रोग भाग जायेंगे। आपने गुरु आज्ञा मानी और आषाढ़ सुदी बारहवीं को उनके ही कर कमलों से दीक्षा ग्रहण कर ली और कुछ ही समय में भयानक व्याधियों ने भी पीछा छोड़ दिया। आपने अपने जीवन काल में बहुत व्रत उपवास किये तथा कठिन मुनिचर्या का पालन करते हुये पटना में दिनांक १४.१.९९ को समाधि मरण किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य महावीर कीर्ति राष्ट्रीय संगोष्ठी

पन्द्रह तारीख से सत्रह तारीख तक आचार्य महावीर कीर्ति राष्ट्रीय संगोष्ठी हुई जिसमें देश के कई विद्वानों ने भाग लिया। कुछ प्रमुख विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं—प्राचार्य शीतलप्रसाद-जयपुर, डॉ० रमेशचन्द्र बिजनौर, डॉ० जयकुमार मुजफ्फरनगर, डॉ० कपूर-चंद्र खतौली, डॉ० नलिन शास्त्री, डॉ० रंजन सूरिदेव, डॉ० अनिल-कुमार, पं० अनूपचंद्र फिरोजाबाद, विष्णु यादव इटावा, भूपेन्द्र जैन इटावा, छोटे लाल जैन झांसी, डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन, श्रावस्ती, डॉ० विजय कुमार जैन लखनऊ आदि।

संयोजक डॉ० सनतकुमार एवं द्रव्य सहयोगी नेमिचंद्र संजयकुमार झांझरी कलकत्ता के अथक प्रयासों से संगोष्ठी आशातीत सफल हुई। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा कि ऐसी संगोष्ठियों की परम आवश्यकता है। संगोष्ठी में एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसमें सभी ने आचार्य श्री आदिसागर जी अकंलीकर को आचार्य स्वीकार किया। त्रिदिवसीय गोष्ठी में पटना समाज का बहुत बड़ा सहयोग रहा जो अन्य लोगों को अनुकरणीय है।

卐 卐 卐 卐 卐

पाटलिपुत्र-पटना

पटना जिसे पहले पाटलिपुत्र के नाम जाना जाता था। वह पच्चीस छब्बीस सौ वर्ष से ज्यादा प्राचीन नहीं है। इतिहास से ज्ञात होता है कि राजा श्रेणिक के पौत्र और कुणिक के पुत्र ने पाटलिपुत्र को बसाया था। इसका क्या कारण रहा होगा इसे सही-सही तो नहीं कहा जा सकता, हां अनुमान से इतना जरूर कह सकते हैं कि राजा श्रेणिक द्वारा विजित अंग, बंग और मगध इन पर उसके पुत्र कुणिक ने राज्य किया तथा राजधानी राजगृही को ही बनाये रक्खा, किन्तु जब उसने अपने पुत्र उदधि को राजपाट सौंपा तो उसे अंग और बंग पर राजगृही मे रहते हुए शासन करने में दिक्कत होती होगी, इसलिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग और बंग अर्थात् चम्पापुरी एवं बंगाल देश के निकट आने के लिये पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया तथा यहाँ एक विशाल जिन मन्दिर की स्थापना भी की ।

पाटलिपुत्र को राजधानी बनाने का कारण महामुनि सुदर्शन का पावन विहार एवं निर्वाण स्थल होना भी हो सकता है । यह भी हो सकता है कि सुदर्शन स्वामी चम्पापुर के थे और चम्पापुर में पंच-कल्याणक प्राप्त भगवान् वासुपूज्य की माता पाटल देवी के स्मरणार्थ अर्थात् सुदर्शन स्वामी के स्मरणार्थ इस नगर का नाम पाटलिपुत्र या भगवान् वासुपूज्य के स्मरणार्थ पाटलपुत्र रखा हो । कुछ विद्वानों की मान्यता यह भी है कि यहाँ पाटल नाम पुष्प बहुत मात्रा में उत्पन्न होते थे, पर यह कहना ज्यादा सटीक नहीं बैठता ।

उदयि ने पाटलिपुत्र को राजधानी बनाकर शासन किया । इसके उपरान्त नन्दों और मौर्यों के शासन काल में पाटलिपुत्र को ही राज-नगर होने की गरिमा प्राप्त रही । राजगृही और चम्पापुर का महत्व घटता गया ।

卐 卐 卐 卐 卐

आचार्य श्री की ६१वीं जन्म जयंती

परम पूज्य आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज की इकसठवीं जन्म जयंती मनाने का सौभाग्य भी पटनावासियों को प्राप्त हुआ । जन्म जयंती मनाने के लिये इन्दौर, जयपुर, किशनगंज-मदनगढ़, भागलपुर, मुंगेर, आरा, कलकत्ता, झाँसी, इटावा, भिंड आदि से सैकड़ों गुरु भक्त एकत्रित हुये ।

कई विद्वानों ने आचार्यश्री के जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला । साधु श्रृंखला से मुझे भी बोलने का समय दिया गया । सम्पूर्ण सभा भाव-विभोर हो भक्ति-रस में डूबी रही तथा प्रगाढ़ गुरु भक्ति का परिचय दिया । इसी अवसर पर मेरे (मुनि सुनीलसागर) द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखित पुस्तक "विश्व का सूर्य" का विमोचन आचार्यश्री इसके पुण्योर्जक विजय रारा भागलपुर ने करवाया।

आचार्यश्री ने अपने आशीर्वचन में कहा—पूज्य पुरुषों का दीक्षा और जन्म दिवस आदि मनाना शुभ कर्मों के आश्रव में कारण है। श्रावक मुनि महाराज जैसा ध्यान तो कर नहीं सकता, अतः उसके द्वारा किया गया दर्शन, पूजन, व्रत महोत्सव आदि ही उसकी आत्मोन्नति में कारण हैं। आप सभी श्रावकों को हमेशा जिनदेव, जिनगुरु और जिनवाणी की सेवा में तत्पर रहना चाहिये। तथा विभिन्न आयोजनों के माध्यम से धर्म प्रभावना करना चाहिये। "देव पूजा और गुरु उपासना" ये दो प्रमुख कर्त्तव्य श्रावकों के हैं, जिन्हें आचरण में लाकर वह स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

वास्तव में साधु-संतों का समागम ही इसलिये होता है कि सोता हुआ श्रावक जाग जाये, भटका हुआ भगवान् आत्मा संभल जाये। आचार्यश्री की अद्भुत वाणी का भव्य जीवों पर ऐसा असर होता है जैसा कमल के पत्तों पर पानी की बूँदों का।

आचार्य देव ख्याति लाभ से दूर तप त्याग में लीन रहते हैं। मैंने कई बार अनुभव किया और देखा भी है कि उनके पास बैठकर कोई उनसे घण्टों तत्त्व चर्चा करे तो कोई बात नहीं; किन्तु उसने किसी साधु की निन्दा अथवा उनकी प्रशंसा की तो उसे या तो उठना पड़ेगा या चुप होना पड़ेगा।

मैंने आंचार्यश्री की आज्ञा से उनके सामने कई बार प्रवचन किया। यदा-कदा प्रवचन में उनके गुणों की प्रशंसा करना चाही तो उन्होंने घड़ी दिखा दी या बोल दिया "समय हो गया"।

अद्भुत गुणों के आधार आचार्यश्री की जन्म जंयती बड़ी धूम-धाम से मनाई गई। जन्म जयंती के उपलक्ष्य में अजित गंगवाल ने "सन्मति इण्टरप्राइजेज" नाम की एक एजेंसी प्रारम्भ की। सभी के मन प्रसन्नता की लहर में डूब रहे थे।

卐 卐 卐 卐 卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोचन चर्या, दीक्षा, देखो पुण्य प्रसंग

समय के आते-जाते वक्त को देखकर मैंने एक जनवरी १९९९ को दो पंक्तियाँ लिखी थी—

समय-समय का फेर है, समय-समय को हेर ।
समय गया आता नहीं, समय-समय मत टेर ।।

इन पंक्तियों के वैसे तो मैं तीन अर्थ करता हूँ, किन्तु सामान्यतः यह कहा गया है कि समय कब निकल जाये कुछ पता नहीं । समय की गति को कोई नहीं जान पाया, एक मात्र सर्वज्ञ प्रभु को छोड़कर ।

अब आचार्य संघ की बात देखो ? गुलजार बाग में कब एक माह पाँच दिन निकल गये कुछ पता नहीं और पटना शहर में कितने तेजी से एक माह निकल गया पता भी न चला । तेरह से दूसरी तेरह तारीख आ गई । तेरह गई चौदह आई । चौदह गई, पंद्रह आई । यह वह तारीख है जिसके इंतजार में संघ पटना में रुका रहा ।

चौदह तारीख को आचार्य श्री आदिसागर जी (अकंलीकर) का ८६वाँ पुण्य स्मृति दिवस था । इस कार्यक्रम की रूपरेखा २०-२५ दिन पहले ही बन चुकी थीं । उसमें एक योजना स्थान चयन की थी । अधिक भीड़ की संभावना से जैन भवन का मैदान छोटा लग रहा था और कम भीड़ की संभावना से गाँधी मैदान बड़ा लग रहा था अतः कार्यक्रम स्थल क्रांग्रेस मैदान को चुना गया ।

घड़ी का एक बजा और कुछ श्रावकों सहित आचार्य संघ कांग्रेस मैदान पर पहुँचा । वहाँ जाकर देखा कि पाण्डाल तो बन चुका है पर मंच अभी बन रहा है । समय की कमी के कारण कार्यकत्ताओं को मना कर दिया क्योंकि केशलोंच होना था । अधूरे मंच पर ही केशलोंच एवं दीक्षा कार्यक्रम शुरु हुआ ।

यहाँ पर मुनिराज़ों के केशलोंच हुये तथा दो क्षुल्लकों की ऐलक दीक्षाएँ हुईं, उनके नाम बदलकर क्षुल्लक सुभद्रसागर से ऐलक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभद्रसागर एवं क्षुल्लक श्रेयांस सम्राट् से बदल कर ऐलक सूर्य-सागर रखे गये ।

कार्यक्रम के मध्य कई विद्वान्, श्रेष्ठी, नेतागण एवं पत्रकार भी उपस्थित थे । मुनिराजों एवं विद्वानों ने आचार्यश्री आदिसागरजी (अकंलीकर) के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला । पत्रकारों ने बड़ी चतुराई से सम्पूर्ण सभा का रूप कागज पर उतारा तथा कई अखबारों में समाचार प्रकाशित हुये ।

पटना में मीडिया के माध्यम से भी जैन धर्म एवं साधुओं का खूब प्रचार-प्रसार हुआ । पटना जैसे गुण्डागर्दी वाले क्षेत्र में भी जैन साधुओं ने शहर में चर्या की । श्रावकों ने अपने-अपने घरों में चौका लगाये, जिनमें कितने ही चौके डेढ़ और दो कि०मी० की दूरी पर थे ।

साधु संघ के विहार आदि में प्रशासन का भी सहयोग प्राप्त हुआ । पंचायत अध्यक्ष राम नारायण यादव तथा राज्यपाल सुन्दर-सिंह भण्डारी आदि दर्शन को बड़े-बड़े नेता और अधिकारियों ने साधु संघ का दर्शन प्राप्त किया ।

आचार्यश्री ने पन्द्रह तारीख को ही घोषणा कर दी थी कि कल विहार होगा । समाज के कई महानुभावों के विनम्र निवेदन पर भी आचार्यश्री ने अब आगे प्रवास करने की अनुमति न दी और सोलह फरवरी को आरा की ओर संघ ने विहार कर दिया । सैकड़ों श्रावकों ने संघ को विदा दी ।

चार

पथिक सदा चलते रहो, न लेना विश्राम ।
सुखाभास भव सुख रहा, पाना शिव सुख धाम ।।

साधु-सदा भ्रमण शील रहकर आत्म साधना कर निज शुद्धात्मा को पाने के लिये प्रयत्न रत रहते हैं । साधु विशेष स्थिति में ही एक स्थान पर अधिक समय रुकते हैं, बिना कारण के नहीं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पटना में दो-ढाई माह के प्रवास के बाद संघ दानापुर, पैलान, होता हुआ सोन नदी का दो-तीन किमी० का पुल पारकर पुल के पास ही एक क्वार्टर में पहुँचा जहाँ एक जैन परिवार था। परिवार का प्रमुख व्यक्ति (जिसका नाम सुनीलकुमार है) आरा रेलवे स्टेशन पर स्टेशन मास्टर है।

यहाँ पर आहार चर्या करने के बाद यहीं संघ ने सामायिक की और रात्रि विश्राम स्थल की ओर विहार हुआ। यहाँ के नगरवासियों ने साधुओं की वैयावृत्ति की। प्रातःकाल यहाँ पर प्रवचन का भी आयोजन हुआ; जिसमें मैंने अहिंसा पालन पर जोर दिया। आचार्य-श्री की अमृत वाणी सुनकर कई लोगों ने व्रत-नियम लिये।

卐 卐 卐 卐 卐

जैन बालाविश्राम धनुपुरा और मन्दिर

पटना से लगभग ५५-५६ किमी० चलकर हम सभी बाला-विश्राम, आरा पहुँचे। यह अंचल धनुपुरा नाम से जाना जाता है। इस उपनगर धनुपुरा में तीन प्राचीन मंदिर और एक कन्या विद्यालय है तथा एक आदिनाथ नेत्रहीन शिक्षा निकेतन है।

सर्वप्रथम आचार्य संघ ने भगवान् आदिनाथ मंदिर के दर्शन किये। जिसमें ३-४ फुट की आदिनाथ भगवान् की मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। अन्य दो प्रतिमायें भी लगभग इतनी ही ऊँचीं है। कुछ धातु एवं पाषाण की छोटीं प्रतिमायें भी हैं। इसके ही पास में दूसरा मंदिर है, जिसे सहस्त्रकूट जिनालय कहते हैं। ऐसे आकार के सहस्त्रकूट जिनालय वर्त्तमान में अधिक नहीं हैं। अतः प्राचीनता की दृष्टि से भी यह महत्व की चीज है।

तीसरा मंदिर भी सड़क पारकर बालाश्रम के उत्तर में ही है। इसे श्री पार्श्वनाथ दिगंबर जैन मंदिर के नाम से जाना जाता है। इसमें भगवान् पार्श्व सहित और भी मनोज्ञ मूर्तियाँ विराजमान हैं। मन्दिर कुछ प्राचीन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन बाला विश्राम भारत में नारी शिक्षा के लिये एक अनूठी संस्था रही है। इसके वर्तमान प्रारूप को आँखों से आँसू निकाले बिना नहीं कहा जा सकता। न तो इस पर समाज का ही ध्यान जा रहा है। और ना ही उनका ही अधिक ध्यान इस ओर है जिनका इस पर अपना एकाधिकार है। ...खैर क्या कहूँ जो भी है ठीक है।

मुख्य द्वार की सीध में दूसरी मंजिल पर भगवान् महावीर का चैत्यालय है। इसमें विद्यालय के स्थापना काल की भी कुछ मूर्तियाँ हैं। वेदी में धातु की प्रतिमायें अधिक है। मंदिर के बाहरी अहाते में आचार्यश्री शान्तिसागर जी की प्रतिमा विराजमान है। यहाँ एक शासन देवी की मूर्ति भी विराजमान हैं। यहाँ से आहारचर्या एवं सामायिक के बाद नगर प्रवेश होना था।

卐 卐 卐 卐 卐

आरा नगर में प्रवेश

जब तक साधु संघ ने ध्यान एवं सामायिक की, तब तक बाला विश्राम में आरावासियों का ताँता लग गया। इसके प्रमुख दो कारण थे, एक तो परम तपस्वी आचार्य गुरुदेव श्री सन्मतिसागर जी का तथा संघ का दर्शन। दूसरा आचार्य महावीर कीर्ति महाराज के पट्टाधीश का आगमन चूँकि यह दोनों विशेषतायें एक व्यक्ति में ही हैं अतः दर्शनार्थियों की चहल-पहल होना स्वाभाविक था।

सामायिक के बाद आचार्यश्री के सान्निध्य में उत्तर भारत की अनूठी बाहुबली भगवान् की मूर्ति का अभिषेक किया गया। आरा प्रवेश के अवसर पर जयपुर, पटना, भागलपुर एवं आरा से पधारे हुये कई महानुभावों ने भगवान् बाहुबली का गद्‌गद मन होकर अभिषेक किया।

भगवान् बाहुबली स्वामी की प्रतिमा के ठीक सामने एक सुन्दर सा ऊँचा मानस्तम्भ है। जिसके चारों ओर एक छोटी दीवाल भी उठाई गयी है शायद सुरक्षा और स्वच्छता के दृष्टिकोण से।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ढाई बजे गाजे-बाजे के साथ संघ की ओर कदम बढ़ाये। कई स्थानों पर आचार्य संघ का स्वागत हुआ। शनैः शनैः चलते हुये भगवान् शांतिनाथ मंदिर पहुँचे जहाँ जिनेन्द्र प्रभु का दर्शन-वंदन किया। यहाँ शान्तिनाथ भगवान् सहित अन्य छोटे जिनबिम्ब भी बड़ी संख्या में विराजमान हैं। कुछ पुराने चित्र भी फ्रेम में मढ़कर टांगे गये हैं।

बाला विश्राम से करीब तीन किमी० चलकर हम सभी बाबू हर प्रसाद जैन धर्मशाला पहुँचे। धर्मशाला की दूसरी मंजिल पर एक जिनमन्दिर तथा सम्मेदशिखर की रचना भी है। पास में स्थित मैनासुन्दरी धर्मशाला का भी निरीक्षण किंया एवं यहाँ भी पूर्णतः निरीक्षण कर आचार्यश्री इसी धर्मशाला में रुकने की अनुमति प्रदान कर दी।

卐 卐 卐 卐 卐

जेल रोड के चन्द्रप्रभु, पार्श्वनाथ एवं धर्मनाथ मन्दिर

दैनिक चर्या यथावत चलने लगी। आचार्यश्री ससंघ अक्सर कर पास में स्थित चंद्रप्रभु मंदिर जाया करते थे। यहाँ चन्द्रप्रभु भगवान् की चतुर्मुखी प्रतिमा है तथा एक और मनोज्ञ प्रतिमा है। मुख्य दरवाजे के सामने एक सुन्दर स्वच्छ शैली में निर्मित मानस्तम्भ है। मंदिर के गर्भ गृह के बाहर श्याम यक्ष एवं ज्वालामालिनी यक्षिणी की मूर्तियाँ हैं। ज्ञातव्य है कि यह भगवान् चंद्रप्रभु के यक्ष-यक्षिणी जिन धर्म प्रभावक देव हैं।

मंदिर की दक्षिण दिशा में एक विशाल भवन में भगवान् पार्श्वनाथ की अनुपम सुन्दर प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति ऐसी सुन्दर है कि देखो तो देखते ही रहो। इस मंदिर की छत पर चौबीसी प्रतिमाओं के साथ भगवान् भरत एवं बाहुबली की भी खड्गासन मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् चंद्रप्रभु मंदिर की चार दिशाओं में चार क्षेत्र रक्षक देव स्थापित हैं। शायद आज से दो सौ या तीन सौ साल पूर्व यह परम्परा यहाँ जोरों पर रही होगी। ऐसा यहाँ के अध्ययन से ज्ञात होता है।

इस मंदिर से भगवान् पार्श्वनाथ मंदिर, मैनासुन्दरी भवन निकट ही है। यह नवनिर्मित मन्दिर है। यहाँ पार्श्वनाथ भगवान् की खड्गासन श्यामवर्णी मूर्ति विराजमान है। मन्दिर को भवन की तीसरी मंजिल पर स्थान दिया गया है। यहाँ की व्यवस्था बहुत सुन्दर है।

चंद्रप्रभु मंदिर से तीसरा वह मन्दिर भी पास पड़ता था जो स्व० मन जी बाबू का है। यहाँ चौबीस तीर्थंकर की प्रतिमायें विराजमान हैं। मन्दिर जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है। व्यवस्था भी कुछ ज्यादा अच्छी समझ में नहीं आती।

यहाँ से धर्मनाथ भगवान् का मंदिर भी निकट ही है। यह भी विशाल मन्दिर है जिसमें धर्मनाथ भगवान् की श्वेतवर्णी प्रतिमा विराजमान है। अन्य और भी धातु एवं पाषाण की मूर्तियाँ हैं। मंदिर की बायीं ओर चम्पापुर की तरह एक कृत्रिम जल मंदिर बनाया गया है, जिसमें भगवान् महावीर की मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। यह स्थान मूल मंदिर से कुछ ही अन्तर पर है।

इतने मन्दिरों का तो अक्सर कर दर्शन होता था बाकी मंदिरों एवं चैत्यालयों का दर्शन यथावसर हुआ करता था।

卐 卐 卐 卐 卐

भगवान् ऋषभनाथ जयन्ती एवं अष्टाह्निका पर्व महोत्सव

आरा आगमन के दूसरे दिन ही (२१ फरवरी) आचार्यश्री का एवं मेरा केशलोंच हुआ। तदुपरांत आचार्यश्री का मंगल प्रवचन हुआ। श्रोतागण आचार्यश्री महावीर कीर्ति महाराज जैसी वाणी सुनकर गद्गद हो रहे थे। ज्ञातव्य है कि आचार्यश्री महावीर कीर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जी महाराज ने लगभग ३५-३६ वर्ष पहले आरा में प्रवास किया था, जिसका आज भी प्रभाव है। लगभग १८-१९ वर्ष पहले उनके पट्टाधीश तपस्वी सम्राट् आचार्यश्री सन्मतिसागर जी भी कलकत्ता चातुर्मास के बाद यहाँ पधारे। तब भी आचार्यश्री की तपस्या से कई चमत्कार हुये और आज भी हो रहे हैं।

यहाँ पर वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा के तत्त्वाधान में भगवान् ऋषभदेव का जन्म जयंती महोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया गया। विश्वविद्यालय के कुलपति सहित वहाँ का सम्पूर्ण प्रबुद्ध वर्ग हिन्दू प्रचारिणी सभा, आरा में एकत्रित था।

विद्वानों की शृंखला में दो-तीन जैन विद्वानों के साथ-साथ ७-८ अजैन विद्वानों ने भगवान् आदिनाथ एवं जैन धर्म की प्राचीनता पर विचार रखे। सभी ने एक मत से भगवान् आदिनाथ को आदि तीर्थंकर तथा प्रथम धर्म प्रवर्तक कहा।

आचार्यश्री ने अपनी मंगल देशना में भगवान् आदिदेव के जीवनवृत्त को लेते हुये शिक्षा-संस्कृति, व्रत और धर्म पर प्रकाश डाला। आचार्य श्री ने अल्प समय में बहुत बड़ीं बातें कह दीं, जिससे सम्पूर्ण सारस्वत समुदाय प्रभावित हुए बिना न रहा।

फाल्गुन माह का अष्टाह्निका पर्व सम्मुख था। आचार्य श्री ने आठ उपवास करने की घोषणा कर दी। कई प्रयास किये कि वे एक साथ आठ उपवास न करें पर आचार्यश्री कब किसकी मानते हैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और निर्विघ्न आठ उपवास किये।

जिस दिन पारणा होना थी, वह दिन होली का दिन था। अतः धर्मशाला के बाहर जाना उचित न समझा। सभी साधु आचार्य श्री के साथ ही चर्या को गये (जिससे उन्हें पारणा भी देखने का लाभ मिले)। मैं और एक महाराज आहार को नगर में गये। किसी भी व्यक्ति ने बाधा न पहुँचाई। बल्कि होली खेल रहे कई अजैन लड़कों ने चौके तक पहुँचने में सहयोग किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्यश्री एवं उनके संघ से समाज का प्रत्येक वर्ग प्रभावित था। प्रतिदिन प्रत्येक क्रिया में कई श्रावक भाग लेते थे। मैंने छहढाला की कक्षा भी प्रारम्भ की, जिसमें काफी बच्चे आते थे।

अष्टाह्निका में आठ दिन तक सिद्धचक्र महामंडल विधान एवं ऋषिमंडल विधान का आयोजन भी आशातीत सफल रहा। कुछ माह पूर्व हुये गजरथ महोत्सव जैसी प्रभावना यहाँ दिख रही थी।

卐 卐 卐 卐 卐

महावीर जयन्ती पंच दिवसीय आयोजन

समय आया, गया और चैत्र शुक्लात्रयोदशी का वह दिन भी आ पहुँचा, जिस दिन भगवान् महावीर का जन्म महाराज सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला (प्रियकारिणी) के यहाँ कुण्डलपुर में हुआ था।

यहाँ आरा नगरी में तो पहले ही भगवान् वीर की जयंती का पंच दिवसीय कार्यक्रम निश्चित हो चुका था। इन पाँच दिनों में जैन-अजैन सभी प्रबुद्ध वर्ग ने भाषण, आरती, भजन, जीवन चारित्र आदि के माध्यम से भगवान् महावीर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये।

अंतिम दिन अर्थात् महावीर जंयती के दिन एक विशाल जुलूस निकाला गया। जिसमें एक वृषभ रथ दो या तीन हाथी तथा ऊँट और घोड़े भी शामिल थे। इस विशाल शोभायात्रा में सैकड़ों धर्म प्रेमियों ने भाग लिया। आचार्य श्री ने किन्हीं कारणों से शोभायात्रा में जाने की स्वीकृति प्रदान न की। भगवान् शांतिनाथ मन्दिर से निकली यह धर्मयात्रा विभिन्न मार्गों से होती हुई, श्री हर प्रसाद जैन विद्यालय पहुँची। यहाँ एक विशाल पांडुक शिला पर भगवान् महावीर का वृहद् रूप में अभिषेक हुआ।

कई विद्वानों के साथ-साथ साधु वर्ग ने भी अपनी वाणी से भगवान् महावीर पर कुछ बातें कहीं। आचार्य श्री ने भगवान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीर प्रभु के जीवन वृत्त को प्रस्तुत कर धर्म, अहिंसा एवं अनेकान्त आदि विषयों पर विंशद प्रकाश डाला। सहज सरल शैली में किया गया व्याख्यान शीघ्र ही जन समुदाय को प्रभावित करता है। जो कि गुरुदेव की वाणी में है।

भगवान् महावीर की पावन जन्म जयंती के पावन दिन यहाँ पर चंद्रप्रभु मंदिर में आचार्यश्री आदिसागर जी (अंकलीकर) आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी एवं आचार्य श्री विमलसागर जी की मनोज्ञ प्रतिमायें आचार्य श्री के सान्निध्य में विराजमान की गई। सम्पूर्ण विधि-विधान ब्रह्मचारिणी मैना बाई ने करवाये।

आचार्य त्रय की यह मूर्तियाँ मनोज्ञ और प्रभावक है। वेदी का आकार आदि भी अत्यन्त सुन्दर है। प्रेमचंद्र जी, अजितकुमार जी, कृष्णकांत जी, सुवीर जैन एवं प्रीत जैन आदि का इस कार्य में महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा। जो समाज को अनुकरणीय है।

आज के पावन दिन एक गीत भी रचा—

महावीर के पंचशील का, जग में अब फिर काम है।
यह ही तीर्थ, यही जिनवाणी, यह ही वेद कुरान है॥
गर सुख न दे सको किसी को, तो दुःख तो मत पहुँचाओं।
नहीं सताओं कभी किसी को, हाय नहीं उनकी पाओ॥
"जिओ और जीने दो" सबको, प्रभु का यह पैगाम है।
यह ही तीर्थ यही जिनवाणी, यह ही वेद कुरान है॥
महावीर के... ॥ १ ॥

निन्दा, चुगली, गाली छोड़ो, यह भी तो अपराध है।
सबको इन से कष्ट पहुँचता, बँधता कर्म अगाध है॥
पर की निन्दा, निज गुण गाना, नीच गति का धाम है।
यह ही तीर्थ यही जिनवाणी, यह ही वेद कुरान है॥
महावीर के... ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चोरी, जारी, मायाचारी, ठग विद्या दुःखकार है।
भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, दुःखों का भण्डार है।।
इनसे बचो बचाओ सबको, इनका बुरा परिणाम है।
यह ही तीर्थ यही जिनवाणी, यह ही वेद कुरान है।।
महावीर के... ।। ३ ।।

क्रोध, मान, रागादिक छोड़ो, लोभ बुरा है त्याग दो।
दुःखियों पर तुम करुणा धारो, वात्सल्य अनुराग दो।।
सद् आचरण, सदा ही पालो, इनमें आतम राम है।
यह ही तीर्थ यही जिनवाणी, यह ही वेद कुरान है।।
महावीर के... ।। ४ ।।

देव, शास्त्र, गुरु का कर अर्चन, सुख–दुःख में समभाव रखो।
इच्छाओं को रोक निरन्तर, निज का निज में रूप लखो।।
सादा जीवन उच्च विचारों, वाला ही इंसान है।
यह ही तीर्थ यही जिनवाणी, यह ही वेद कुरान है।। ५ ।।
महावीर के पंचशील का, जग में अब फिर काम है।
यह ही तीर्थ यही जिनवाणी, यह ही वेद कुरान है।।

卐 卐 卐 卐 卐

मेरी सम्मेद शिखर यात्रा का विमोचन

वैशाख वदी नवमी के दिन आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी का जन्म जन्यती स्मृति दिवस मनाया गया; जिसके लिये—श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर का विशाल भवन चुना गया। क्योंकि इस दिन एक मुनि दीक्षा का भी कार्यक्रम था और "मेरी सम्मेदशिखर यात्रा" का विमोचन भी।

कार्यक्रम में पटना, जयपुर, राजस्थान, दिल्ली आदि के श्रावकों ने भी भाग लिया। सम्पूर्ण भवन खचाखच भरा हुआ था। कुछ साधुओं का केशलोंच चल रहा था। उसी बीच आचार्य श्री के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा राजीव जैन छावड़ा ने "मेरी सम्मेदशिखर यात्रा" नामक पुस्तक का विमोचन कराया।

अधिक वक्ता होने से संयोजक मिथिलेश कुमार ने कई वक्ताओं को समय भी नहीं दिया। आचार्यश्री ने मुझे प्रवचन करने का आदेश दिया। मैंने जन्म जयंती एवं दीक्षा के महत्व को बताते हुए साधुओं के एक मूलगुण केशलोंच की भी व्याख्या की।

संस्कारों के माध्यम से आचार्य श्री ने ऐलक सूर्यसागर जी को मुनि सुरदेवसागर बना दिया।

आचार्य श्री ने अपने उपदेशों में कहा—आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी महाराज का जन्म फिरोजबाद में हुआ था। माँ बूँदा की कोख से जन्मा बालक महेन्द्र पढ़-लिखकर बहुत बड़ा विद्वान् बना। आचार्य श्री आदिसागर श्री (अंकलीकर) का संयोग प्राप्त होने पर उन्होंने मुनि दीक्षा ग्रहण की। उनके द्वारा प्रदत्त आचार्य पद का निर्वाह करते हुए महसाना में समाधि की।

वास्तव में जीवन का मूल्य सभी नहीं समझ पाते। जन्म का महत्त्व और मरण का दुखद अंत आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी महाराज ने समझा और उन्होंने अपने जीवन को तप त्यागमय बना कर संसार से मुक्त कराने वाला उपक्रम किया। दीक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस जैनेश्वरी दीक्षा धारण करने पर ही मोक्ष होता है अतः प्रत्येक भव्य दीक्षा धारण करना चाहिये। जो दीक्षा नहीं धारण कर सकते उन्हें कोई व्रत-नियम अवश्य लेना चाहिये, जिससे उन्हें भविष्य में परम सुख प्राप्त हो सके। आचार्य श्री के प्रवचन के साथ ही सभा का समापन हुआ।

卐 卐 卐 卐 卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरा के जैन मन्दिर एवं धर्मशालायें

धर्म नगरी आरा में कई जैन मन्दिर एवं जैन संस्थायें है । जिनमें से कुछ प्राचीन और कुछ नवीन निर्मित स्थान है । उन सभी मंदिरों की सूची नीची दे रहे हैं, जो प्रमुख एवं दर्शनीय स्थल हैं उनके आगे सितारे (*) का चिह्न लगा है ।

भगवान् महावीर मार्ग (जेल रोड) पर

१. मंदिर श्री धर्मनाथ जी (स्व० मक्खन लाल जी)
*२. जल मंदिर श्री महावीर स्वामी
*३. मंदिर श्री पार्श्वनाथ जी (मैना सुन्दर धर्मशाला के ऊपर)
*४. मंदिर श्री चौबीसी तीर्थंकर (स्व० मन जी बाबू)
*५. मंदिर श्री चन्द्रप्रभु जी, मान स्तम्भ, श्री पार्श्वनाथ जी चैत्यालय २४ तीर्थंकरों के टोंक एवं चैत्य वृक्ष
*६. मंदिर श्री आदिनाथ (हरप्रसाद दास धर्मशाला)
*७. सम्मेदशिखर की रचना (हरप्रसाद दास धर्मशाला)
८. चै० श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० ताराचन्द जी)
९. चै० श्री महावीर स्वामी (अचिन्तकुमार जी)
१०. मंदिर श्री चन्द्रप्रभु जी (स्व० संतोष बाबू)
११. चैत्यालय श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० वीरकुमार जी)
*१२. मंदिर श्री शान्तिनाथ जी एवं श्री निर्मलकुमार चक्रेश्वरकुमार जैन कला एवं संस्कृति दीर्घा
*१३. श्री जैन सिद्धान्त भवन-प्राचीन हस्तलिखित ताड़-पत्र एवं पुस्तकों आदि का वृहद् भण्डार
*१४. मंदिर श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० गजकुमार जी)

महाजन टोली नं० १ (बढ़हीया फाटक) गली में

१५. चैत्यालय श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० राजेन्द्रकुमार जी)
१६. मंदिर श्री महावीर स्वामी (स्व० शिवनन्दनकुमार जी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७. चै० श्री महावीर स्वामी (स्व० नागेन्द्रकुमार जी)
१८. मंदिर श्री महावीर स्वामी (द्रौपदी बीबी)
१९. चै० श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० माणिक चन्द जी)
२०. मंदिर श्री अजीत नाथ जी (कौड़ी बहू)
२१. चैत्यालय श्री चन्द्रप्रभु जी (स्व० मुखेन्द्र बाबू)
२२. मंदिर श्री पद्मप्रभु जी (स्व० बांके बाबू)
२३. चै० श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० ऋषभ सुन्दरदास जी जैन)
२४. चैत्यालय श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० नन्हू जी)
२५. चैत्यालय श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० बच्चू बाबू)

गोपाली कुँआ के उत्तर रोड पर

२६. मंदिर श्री महावीर स्वामी (स्व० मंदिल दास)
२७. मंदिर श्री श्रेयांसनाथ जी (स्व० प्रभास बाबू)

महाजन टोली नं० २ गली में

*२८. मंदिर श्री पार्श्वनाथ जी (पंचायती मंदिर)
*२९. नन्दीश्वरद्वीप रचना (स्व० जग्गा बीबी)
*३०. मंदिर श्री पार्श्वनाथ जी ऊपर (मूनलालजी)
*३१. मंदिर चौबीसो तीर्थंकर (स्व० बच्चा बाबू)
*३२. समोशरण की रचना (स्व० बच्चा बाबू)
३३. चैत्यालय श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० मोतीचन्द जी)

गोपाली कुँआ के पश्चिम महाजन टोली नं० १

*३४. चै० श्री महावीर स्वामी (पद्मराज जी)

मेन रोड, (धर्मन चौक)

३५. मंदिर श्री महावीर स्वामी (स्व० जयचन्द जी)

महादेव रोड

३६. चैत्यालय श्री चन्द्रप्रभु जी (स्व० भैरो कुमार जी)
३७. मंदिर श्री शान्तिनाथ जी (स्व० प्रभुदास जी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३८. मंदिर श्री पार्श्वनाथ जी (स्व० राजेन्द्र बाबू)

३९. चै० श्री शीतलनाथ जी (स्व० निर्मल बाबू)

बड़ी मठिया

४०. श्री मुनिसुव्रतनाथ जी (मनोहर का मंदिर)

नवादा (स्टेशन रोड)

४१. चै० श्री महावीर स्वामी (स्व० जीतेन्द्रचन्द्र जी)

धनुपरा (शहर से ३ किलोमीटर उत्तर)

*४२. मंदिर श्री बाहुबली स्वामी एवं मान स्तम्भ

४३. मंदिर श्री महावीर स्वामी (उपर)

४४. मंदिर श्री पार्श्वनाथ जी (सड़क के उत्तर)

४५. मंदिर श्री आदिनाथ जी (सड़क के उत्तर)

४६. चैत्यालय श्री सहस्त्रकूट (सड़क के उत्तर)

मसाढ़ गाँव (शहर से १० किलोमीटर पश्चिम)

४७. मंदिर श्री पार्श्वनाथ जी (प्राचीनतम)

धर्मशालाएं

१. श्री मैना सुन्दरी भवन, जेल रोड

२. श्री हरप्रसाद दास जैन धर्मशाला, जेल रोड

३. श्री हरखेनकुमार जैन दिगम्बर भवन एवं धर्मार्थ औषधालय, बड़ी चौक

जिनालयों का आधिक्य : कुछ कारण

उपरोक्त मंदिरों एवं चैत्यालयों की संख्या देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन सभी मंदिरों, संस्थानों या चैत्यालयों का निर्माण जिनभक्ति अथवा जन सेवा मात्र के लिये नहीं किया गया अपितु इनके निर्माण के कई कारण जान पड़ते हैं। जिनमें से कतिपय कारणों पर विचार करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम—नगर प्राचीन जान पड़ता है। संभव है किन्हीं तीर्थंकरों का भी विहार यहाँ हुआ हो क्योंकि काशी, राजगृही, पटना और चम्पापुर की पंक्ति में ही इसका भी क्रम है। इस कारण पूर्व काल से ही यहाँ मन्दिर निर्माण की परम्परा रही हो।

द्वितीय—कई स्फुट प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ पर भट्टारकों का अधिक प्रभाव रहा है। कई मंदिरों की प्रशस्तियों में भट्टारकों के नाम आते हैं। कुछ स्थानों पर आज भी भट्टारकों के चरण चिह्न स्थापित है। अतः कह सकते हैं कि भट्टारकों की प्रेरणा से प्रेरित हो यहाँ इतने मंदिरों एवं चैत्यालयों की स्थापना हुई हो। जैसा कि एक उद्धरण बाबू प्रभुदास जी का प्राप्त होता है जिन्हें भट्टारक जी ने छह मंदिर बनवाने के लिये कहा था।

तृतीय—ऐतिहासिक तत्त्वों एवं किवदंतियों से ज्ञात होता है कि यह रईसों (सेठों) का नगर रहा है। यह यहां प्रचलित "बाबू" शब्द से भी अनुमान लगता है। हो सकता है श्रेष्ठियों ने मुगल या अंग्रेज शासन का प्रभाव देखते हुये, बहू-बेटियाँ घर में ही भगवान् का दर्शन कर लें, इस दृष्टिकोण से मंदिरों का निर्माण करवाया हो।

चौथा—मनुष्य में मान की अधिकता पाई जाती है। हो सकता है यहाँ के रईसों में अभिमान के साथ-साथ स्पर्धा भी रही हो और मंदिरों का निर्माण हुआ हो। लेकिन कला, विस्तार एवं स्थानों के चुनाव को देखते हुये ऐसा मानना ज्यादा उपयुक्त नहीं लगता।

पाँचवा और अन्तिम—हो सकता है मुगलों के विध्वंस के समय से या शंकराचार्य की जैन धर्म के प्रति ईर्ष्या के समय से यहाँ जिनालयों का अस्तित्व बनाये रखने के लिये मंदिरों का निर्माण सहज ही होता रहा हो।

उपरोक्त तथ्यों से कुछ लाभ-हानि सिद्ध हो न हो किन्तु वर्तमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में मंदिरों की व्यवस्था एवं स्वच्छता-सुरक्षा आदि को देखकर दुःख अवश्य होता है। कई मंदिरों में ब्राह्मण पुजारी पूजा करता है, जबकि जिस परिवार का मंदिर हैं उसके ८-८ सदस्य जिंदा हैं।

मंदिरों के मालिकों एवं उनसे संबंधित जनों के लिये यह शोभा की बात नहीं कि पैसे लेकर ब्राह्मण अभिषेक पूजन करे और वह भी पैन्ट-शर्ट पहन कर। यह प्रत्यक्ष घटना घटने वाली थी। आचार्य श्री ने फटकार लगाई इसलिये वह ब्राह्मण पुजारी दूर खड़ा हो गया।

मंदिरों की व्यवस्था एवं स्वच्छता-सुरक्षा में सम्पूर्ण समाज को एकजुट होकर आगे आना होगा। प्रत्येक मंदिर के अधिकारियों को चाहिये कि प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-अर्चना अवश्य करें। जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करने से महान् पुण्य का संचय होता है। अतः प्रमाद लज्जा एवं भय को छोड़कर जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-वंदना, अभिषेक आदि करना चाहिये।

卐 卐 卐 卐 卐

शिखरजी दुर्घटना के पूर्व संकेत

आचार्यश्री ने १६ अप्रैल को निश्चित कर दिया कि १८ तारीख को विहार बनारस की ओर होगा। सम्पूर्ण समाज ने खूब आग्रह और प्रयास किये कि आने वाला चातुर्मास आरा में हो जाये पर सभी असफल रहे।

१८ अप्रैल को संजय झांझरी ने शांति विधान करवाया जिसमें काफी लोगों ने भाग लिया। आज संघ का विहार भी था अतः भीड़ स्वाभाविक भी थी। विधान के अंतिम क्षणों में किसी श्रावक के दुपट्टे में आग लग गई जो तुरन्त बुझा दी गयी। इसी अठारह तारीख से सम्मेदशिखर में पंचकल्याणक था। आचार्य श्री ने अपने ज्ञान से भावी दुर्घटना को जानकर संजय झांझरी को कहा—"तुम सम्मेद-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखर जाना लेकिन बहुत सावधान रहना तथा जन्म कल्याणक के दिन ही वापिस घर पहुँच जाना । प्रतिष्ठा में कोई विघ्न आ सकता है ।"

आचार्य श्री ने पटना में भी इसी प्रकार की बातें कई बार दोहराते हुये यही कहा कि मैं सम्मेद शिखर नहीं जाऊँगा । पटना की समाज ने अथक प्रयत्न किये लेकिन आचार्य श्री तैयार न हुये । आरा की समाज में भी इस प्रकार के प्रयास हुए फिर भी आचार्य श्री वहाँ जाने को तैयार न हुये ।

अठारह अप्रैल (अक्षय तृतीया) के अपने प्रवचन में भी आचार्य श्री ने कहा—"घर आये हुए मेहमान को संभालना प्रथम कर्त्तव्य है न कि किसी दूसरे सम्बन्धियों के विवाह महोत्सव में जाना ।" आपके यहाँ से साधुओं का विहार हो रहा है उन्हें आप बनारस तक पहुँचाने जाओ । सम्मेदशिखर जी के दर्शन तो बाद में भी हो सकते हैं पर गये हुये साधु वापिस आ जाये यह आवश्यक नहीं ।

जो श्रावक सम्मेदशिखर जाना चाहते हैं उन्हें मैं मना तो नहीं कर सकता, हाँ ! इतना जरूर कहता हूँ कि पहले साधु संघ को बनारस तक पहुँचाओ ।

शायद भावी दुर्घटनाओं को जानकर ही आचार्य श्री ने १८ तारीख को संघ सहित आरा से बनारस की ओर विहार कर दिया, ताकि आरा, पटना एवं अन्य स्थानों से पधारे श्रावक साधुओं की विहार चर्या में लग जाये और उक्त घटना से बच जायें । विहार के समय जगह-जगह से अपार जन सैलाब उमड़ पड़ा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँच

आरा से लगभग ५-६ कि०मी० चलने के बाद रात्रि विश्राम एक हिन्दू मन्दिर में हुआ। प्रातः ८ बजे मसाढ़ पहुँचे। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। पास ही तालाब और कुआँ है। किवदंतियाँ कहती हैं कि यहाँ भगवान् महावीर का समवशरण आया था। मन्दिर की प्राचीनता से प्रतीत होता है कि पूर्वकाल में यहाँ जैन समाज का अस्तित्व रहा होगा।

वर्तमान में समाज की असावधानी से इसका जीर्ण-शीर्ण आकार मन को दुःखित करता है। लोग यह भी कहते हैं कि यहाँ स्थित तालाब तथा कुछ खेत मन्दिर ट्रस्ट की स्थायी सम्पत्ति थे जिन पर अब समाज का अधिकार नहीं है। इस मन्दिर में भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजमान है। समाज एवं श्रेष्ठियों का ध्यान इस ओर जाना आवश्यक है। बाढ़ और मसाढ़ दोनों को तीर्थक्षेत्र के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

卐 卐 卐 卐 卐

बोधी दुर्लभ

बासंती वयार-सूर्य प्रताप के सामने अपना प्रभाव दिखाने में समर्थ न थी। गरम लू आग की लपटों की तरह बह रही थी। मसाढ़ से चलकर संघ मुख्य सड़क की ओर जा रहा था। रास्ते में आम के वृक्षों की बहुत तादाद थी। कितने ही आम के वृक्ष फलों से इस तरह लदे थे जैसे सावन भादों के मेघ, पर गर्मी का ताप उन्हें भी झेलना पड़ रहा था। कई छोटे-छोटे आम के वृक्ष थे जिनमें बड़े-बड़े आम्र फल लग रहे थे। कुछ वृक्ष आम्र फलों से इस तरह झुक रहे थे कि अगर कोई उनके छाया में लेटकर बिना हाथ से तोड़े आम खाना चाहे तो सीधे मुँह से आम खा सकता था। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य जितना अच्छा था, जन-जीवन उतना ही खराब था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टूटी-फूटी डामर की सड़क पारकर मुख्य सड़क पर पहुँचे। मही महाताप युक्त हो रही थी। चर्या परिषह को जीतने की इच्छा रखने वाले साधु बिना किसी अपेक्षा के सड़क पर चलने लगे। चलते हुये सायंकाल एक गाँव में पहुँचे जहाँ गाँव वालों ने पहले ही संघ को ठहरने की व्यवस्था कर दी थी।

आचार्यश्री ने एक उपवास तथा चार अंतराय हो चुकने के कारण से प्रातःकाल मुझे प्रतिक्रमण के पूर्व ही आगे के लिये प्रस्थान करा दिया। मैं और मुनि सुरदेवसागर जी प्रभात में ही चल दिये। लगभग ४-५ किमी० चले होंगे कि एक जीप गाड़ी मिली। जिसमें से यात्रियों ने उतर कर नमोऽस्तु आदि किया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे श्वेताम्बर है तथा दो श्वेताम्बर साधुओं को सम्मेदशिखर जी यात्रा के लिये ले जा रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि साधु आगे निकल गये है तथा आज का आहार आरा में होगा। उनकी पैदल रफ्तार को सुनकर एक बार तो मैंने सोचा इतने क्यों चलते हैं? पर बोला कुछ नहीं।

जिस गाँव में चर्या होना था, उस गाँव के वाह्य हिस्से में एक खेत में बहुत भीड़ एकत्रित थी। कारण पूछने पर कुछ लोगों ने बताया—कि गाँव के किसी व्यक्ति ने पेड़ से लटककर फाँसी लगा ली है।

मैंने मूर्ख मानव पर कुछ टिप्पणी न की, आखिर वहाँ कहने का मूल्य ही क्या था? पर विचार अवश्य किया कि अज्ञानवश मानव अमूल्य मानव शरीर को पाकर उसे यूँ ही व्यर्थ में नष्ट कर देता है। मानव तन का मूल्य संसार की कोई भी वस्तु नहीं है। यह शरीर पुद्गलमय है, नश्वर है, फिर भी अमूल्य है क्योंकि इसके द्वारा संयम की साधना और व्रत नियमों की आराधना की जा सकती है।

देवों के शरीर में भी वह सामर्थ्य नहीं जो मानव के शरीर में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव संयम धारण नहीं कर सकते और बिना संयम के मोक्ष होता नहीं। मोक्ष मात्र मनुष्य गति से ही होता है और पूर्ण संयम भी मनुष्य ही धारण कर सकता है।

मानव तन प्राप्ति की दुर्लभता को कवि मंगतराय कहते हैं—

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरषे, सो दुर्लभ प्राणी॥
उत्तम देश सु-संगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना॥
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावे।
पाकर केवल ज्ञान नहीं, फिर इस जग में आवे॥

उपरोक्त पंक्तियों में सर्वप्रथम मानव शरीर का प्राप्त होना ही दुर्लभ कहा है उसके बाद अन्य गुणों का प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ ही है। जिसमें मोक्ष महादुर्लभ है।

卐 卐 卐 卐 卐

क्या कहते हैं वेद पुराण

सोचते-विचारते सूर्य मन्दिर पहुँचे। जहाँ चर्या होना थी। पहुँचते ही कई ग्रामवासी आकर यत्र-तत्र खड़े हो गये। मैंने उन्हें बैठने का संकेत किया, वे आकर पास ही बैठ गये। बैठ चुकने के बाद जो प्रश्न प्रायः सभी पूंछते हैं वही पूछा कि आप नग्न क्यों रहते है?

मैंने उन्हें सामान्य बोलचाल की भाषा में समझाया कि जैसे नन्हें बालक में विकार नहीं होता और वह चाहे जैसा घूमता रहता है। स्वेच्छा से तो वस्त्र पहिनता ही नहीं, पहनाओं तो रोता जरूर है। इसी तरह जैन मुनि निर्विकार होते है। उन्हें किसी से कुछ भी राग-द्वेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होता। संसार की सभी स्त्रियों को वे माँ, बहिन या पुत्री की दृष्टि से देखते हैं।

एक अन्य बोला—इस धर्म के संस्थापक कौन हैं? मैंने कहा—जैन धर्म अनादि निधन है। इसका संस्थापक कोई भी नहीं है, हाँ! जब धर्म का ह्रास होने लगता है तब सुधारक जरूर उत्पन्न होते हैं। जिन्हें तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थंकर चौबीस होते हैं जो धर्म की वृद्धि करते हैं। प्राणी मात्र को सुख का मार्ग बताते हैं। इस काल की दृष्टि से हम भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) को जैन धर्म का संस्थापक कह सकते हैं। उनके बाद अन्य तेईस तीर्थंकर और हुये जिनमें यदुवंश तिलक भगवान् नेमिनाथ बाइसवें, भगवान् पार्श्वनाथ तेइसवें और भगवान् महावीर अंतिम तथा चौबीसवें तीर्थंकर हैं।

वेदों, स्मृतियों एवं पुराणों में भगवान् ऋषभदेव, नमिनाथ, अजितनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर का वर्णन बहुत जगह पाया जाता है। अन्य तीर्थंकरों के सम्बन्ध में भी यत्किंचित लिखा है। "ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुवरेण्यं भर्गो देवस्य धी महिधियो योनः प्रचोदयात्" यह मंत्र वास्तव में ऋषभ मंत्र है जो प्रतिष्ठा के समय मूर्तियों को सूरिमंत्र के रूप में भी दिया जाता था। वर्तमान में इसे लोग गायत्री मंत्र के नाम से जानते हैं।

दुःखी मानव को सुख शान्ति कैसे मिले? के उत्तर में मैंने कहा—बिना अहिंसा और अनेकान्त के शान्ति और सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। भगवान् महावीर कहते हैं जब तक तुम्हारे अंदर "जिओ और जीने दो" के भाव नहीं है तब तक तुम तीन काल में भी सम्पूर्ण शान्ति को उपलब्ध नहीं कर पाओगे, सुख को सही रूप में नहीं पा सकोगे।

गाँव के सरपंच का प्रश्न था आपकी साधना का मूल आधार और आधेय क्या है?

: हमारी साधना मुख्यतः अहिंसा की साधना है। जब तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्णतः अहिंसक वृत्तियाँ जीवन में नहीं उतरेंगी तब तक सुख प्राप्त न होगा। सुख प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति के लिये ही जैन साधुओं का संयम, तप, त्याग एवं ध्यान होता है।

भगवान् महावीर के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पंचशीलों को पूर्णतः पालन करने वाले मुनि शत्रु-मित्र, वन-भवन, कंचन-काँच, सुख-दुख आदि में समभाव धारण करते हैं। कभी किसी पर क्रोध नहीं करते। चौबीस घण्टे में दिन में खड़े होकर अंजुली (पाणीपात्र) में ही आहार लेते हैं; कैसी भी बीमारी हो, गर्मी हो या अन्य कारण हो कभी-भी दोबारा भोजन या पानी ग्रहण नहीं करते। धरती में सोना, प्रत्येक ऋतु में नग्न रहना, केशलोंच करना, खड़े होकर घण्टों तपस्या करना उनके अपने मुख्य गुण हैं।

प्रतिक्रमण आदि करने के बाद मेरी ये व्याख्यायें चल ही रही थीं कि आचार्य श्री आ गये। आचार्य संघ का स्वाध्याय प्रारम्भ हुआ तथा एक घण्टे तक चला। स्वाध्याय पूर्ण होते ही उन्होंने मुझे आदेश दिया कि तुम पहले आहार कर आओ क्योंकि तुम्हारा पाँच दिन से आहार ठीक से नहीं हो रहा है। मैं तुरन्त आहार को निकला मुनिश्री सुन्दरसागर जी एवं मुनिश्री श्रेष्ठसागर जी भी साथ गये।

मेरा आहार पूर्ण होते ही सम्पूर्ण संघ ने चर्या की। सभी का आहार निर्विघ्न हुआ। सामायिक एवं स्वाध्याय के बाद अगले पड़ाव की ओर विहार हुआ।

卐 卐 卐 卐 卐

गुरु-शिष्य मिलन

एक गाँव में रात्रि विश्राम के बाद ब्रह्मपुर पहुँचे। यहाँ एक तेल मिल में आहार हुआ। कई लोगों ने व्रत नियम ग्रहण किये। इस मिल के मालिक ने अपने घर में पहले से ही आचार्य महावीर कीर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराज की फोटो लगा रखी थी। वह जाति से तो अजैन था पर भक्ति एवं आचरण से जैन से कम नहीं था।

आज गर्म हवा का प्रभाव ज्यादा था। इसलिये यहाँ से लगभग पाँच बजे विहार किया अगले गाँव के लिये जो यहाँ से ८-९ किमी० के लगभग था। वहाँ पहुँच कर रात्रि विश्राम किया।

बाईस अप्रैल का आहार डुमराव गढ़ में राजा डुमराव के पुराने महल में हुआ। इसके चारों ओर विशाल भू-भाग में हरा-भरा उपवन है। वर्तमान में यहाँ मंत्री/नेता एवं उच्चाधिकारियों को ही ठहरने दिया जाता है।

परीक्षायें होने के कारण स्कूलों में आहार और विश्राम कम ही हुये। आगे भी एक पेट्रोल पम्प वाले के विशाल प्रांगण में संघ ने सामायिक एवं रात्रि विश्राम किया।

अगला आहार बक्सर से कुछ किमी० पहले एक कोल्ड स्टोरेज पर हुआ। यहाँ पर मुनिश्री सुविधिसागर जी के गृहस्थावस्था के पिता श्री इन्दरलाल जी पधारे जिन्होंने सूचना दी कि मुनिश्री सुविधिसागर जी भी पास ही है। कब और कहाँ वह आपके पास पहुँचे।

आचार्यश्री ने कहा—जहाँ शाम को पहुँचना है उस स्थान की सूचना उनके पास भिजवा दो। क्योंकि अभी वे १५-१६ किमी० दूर है और वह स्थान जहाँ रात रुकना है यहाँ से ४-५ किमी० है। चूँकि मुनिश्री बनारस से ही आचार्यश्री के दर्शन को गये थे पर उनका जाने का और हमारे आने का रास्ता अलग-अलग होने से इतना अंतर पड़ा।

बक्सर के बाहर से ही गंगा नदी का पुल पार कर संघ समस्ती-पुर नामक नगर में पहुँचा। जहाँ एक पंचायत भवन में रुकना हुआ। यहीं मुनिश्री सुविधिसागर जी आ पहुँचे। वे सुबुद्ध-चिंतक एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तार्किक साधु हैं। उनकी शिष्यायें सुविधिमति और सुयोगमति ये दोनों आर्यिकायें भी सुबुद्ध और विनयशील है।

छह

मुनिया, मोहम्दाबाद, गाजीपुर, साम्हाबाद, इकरोरी आदि नगरों से होते हुये संघ ३० अप्रैल ९९ को चंद्रपुरी पहुँचा। यह क्षेत्र आरा से लगभग १८२ किमी०, बनारस से २१ किमी०, सारनाथ (सिंहपुरी) से १६ किमी० और चन्द्रावती गाँव से निकलने वाली मुख्य सड़क से १ किमी० की दूरी पर स्थित है। चंद्रपुरी को भगवान् चंद्रप्रभु की जन्म नगरी होने का गौरव प्राप्त है। उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

卐 卐 卐 卐 卐

तीर्थंकर चन्द्रप्रभु

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चन्द्रपुर नगर है। किसी समय यहाँ इक्ष्वाकुवंशीय राजा महासेन राज्य करते थे। उनकी प्रिय रानी का नाम सुलक्षणा था। एक चैत्र कृष्णा पंचमी के दिन रानी सुलक्षणा ने रात्रि के पिछले प्रहर में हाथी, बैल आदि सोलह स्वप्न देखे। उसी समय एक अहमिन्द्र स्वर्ग के जयन्त विमान से आकर उनके गर्भ में प्रवेश किया। प्रातः होते ही देवों ने आकर भगवान् चन्द्रप्रभु के गर्भकल्याणक का उत्सव किया एवं भगवान् के माता-पिता की स्वर्ग से लाये हुए वस्त्राभूषणों से पूजा की। माता की सेवा में कई देवियाँ पहले से ही उपस्थित थी तथा छह माह पूर्व से रत्नवृष्टि चल रही थी।

गर्भ समय बीत जाने पर लक्ष्मणा देवी ने पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में मति, श्रुत, अवधि—इन तीन ज्ञानों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभूषित पुत्ररत्न प्रसव किया। भगवान् चन्द्रप्रभु के जन्म लेने से समस्त लोक में आनन्द छा गया। क्षण-भर के लिये नारकियों ने भी सुख का अनुभव किया। उसी समय देवों ने मेरुपर्वत पर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया एवं "चंद्रप्रभ" नाम रक्खा। बालक चन्द्रप्रभु अपनी सरल चेष्टाओं से माता-पिता आदि को हर्षित करते हुए उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के बाद नौ सौ करोड़ सागर बीत जाने के बाद अष्टम तीर्थंकर प्रभु उत्पन्न हुये थे। इनकी आयु में इसी काल में युक्त थी। आयु दस लाख पूर्व की थी, शरीर एक सौ पचास धनुष (६०० हाथ) ऊँचा था, रंग चन्द्रमा के समान धवल था तथा चरण चिह्न भी चंद्रमा ही था।

दो लाख पचास हजार पूर्व बीत जाने के बाद उन्हें राज्यविभूति प्राप्त हुई। उनका विवाह भी कई कुलीन कन्याओं के साथ हुआ, जिससे उनका गार्हस्थ्य जीवन अधिक सुखमय हो गया।

जब राज्य करते-करते उनकी आयु के छह लाख पचास हजार पूर्व एक चौबीस पूर्वाङ्ग बीत गये, तब वे एक दिन वस्त्राभूषण धारण करने के लिये अलंकार गृह में गये। वहाँ ज्यों ही दर्पण में उन्होंने अपना मुख देखा, त्यों ही उन्हें मुख पर कुछ विकार-सा प्रतीत हुआ, जिससे उनका हृदय सांसारिक भोगों से विरक्त हो गया।

वे सोचने लगे "यह शरीर प्रतिदिन कितना ही क्यों न सजाया जाय, पर काल पाकर विकृत हुए बिना नहीं रह सकता। विकृत होने की बात ही क्या ? यह सम्पूर्ण नष्ट ही हो जाता है। इस शरीर में राग रखने से, उससे संबंध रखने वाले और भी अनेक पदार्थों से राग करना पड़ता है; जिससे संसार के दुःख प्राप्त होते हैं। 'अब मैं ऐसा कोई कार्य करूँगा, जिससे अगले भवों में यह शरीर ही प्राप्त न हो।' तभी लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य-चिन्तन का समर्थन किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् चंद्रप्रभ अपने पुत्र "चंद्र" को राज्य सौंपकर देवनिर्मित विमला पालकी पर आरूढ़ होकर सर्वर्तुक नामक उद्यान (वन) में पहुँचे । वहाँ उन्होंने सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर पौष कृष्णा एकादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की । उन्हें दीक्षा के समय ही मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया । वे दो दिन बाद आहार लेने की इच्छा से नलिनपुर नगर गये, वहाँ महाराज सोमदत्त ने उन्हें पड़गाहन कर नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया । श्रेष्ठ पात्र दान के प्रभाव से देवों ने सोमदत्त के महल पर पंचाश्चर्य प्रकट किये । मुनिराज चन्द्रप्रभ नलिनपुर से लौटकर वन में आकर फिर ध्यानारूढ़ हो गये ।

इस तरह छद्मस्थ अवस्था में तप करते हुये उन्हें तीन माह बीत गये । फिर उसी सर्वर्तुक वन में नाग वृक्ष के नीचे वे दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा धारण कर बैठ गये । वहीं उन्होंने क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होकर मोहनीय कर्म का नाश एवं शुक्लध्यान के प्रताप से शेष तीन घातिया कर्मों का भी नाश कर दिया, जिससे उन्हें फागुन कृष्णा सप्तमी को अनुराधा नक्षत्र में संध्या समय दिव्य ज्योतिर्मय लोकालोक-प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त हो गया । देवों ने आकर ज्ञान कल्याणक की पूजा की एवं उत्सव मनाया ।

इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने वहीं पर समवशरण की रचना की थी; जिसमें सभी प्राणी सुख से बैठे थे । समवशरण के मध्य में स्थित होकर भगवान् ने अपना मौन भङ्ग किया अर्थात् दिव्य ध्वनि के द्वारा कल्याणकारी उपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर अनेक नर-नारियों ने मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं के व्रत धारण किये । दिव्य ध्वनि समाप्त होने के बाद इंद्र ने विहार करने की प्रार्थना की । उन्होंने अनेक देशों में विहार किया एवं बहुत समय तक जीवों को संसार-सागर से उबार कर मोक्ष प्राप्त कराया ।

उनके समवशरण में दत्त आदि तिरानवे गणधर, दो हजार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वादशांग के जानकर, दो लाख चार सौ शिक्षक, दस हजार केवली, चौदह हजार विक्रिया वाले, आठ हजार मनःपर्यय ज्ञानी एवं सात हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर ढाई लाख मुनिराज थे। वरुणा आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकायें थी। तीन लाख श्रावक एवं पाँच लाख श्राविकायें थीं। असंख्यात् देव देवियाँ एवं असंख्यात् तिर्यंच थे। उन्होंने अनेक स्थानों पर विहार कर धर्म-तीर्थ की प्रवृत्ति की एवं अन्त में श्री सम्मेदशिखर पर आकर विराजमान हुये। वहाँ उन्होंने एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण किया, जिससे उन्हें एक माह उपरान्त फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र के समय मुक्ति की प्राप्ति हो गई। देवों ने आकर उनके निर्वाण की पूजा की।

卐 卐 卐 卐 卐

चन्द्रप्रभु की जन्मस्थली–चन्द्रपुरी

चंद्रपुरी को चन्द्रावती एवं चन्द्रानन भी कहा जाता है। वर्तमान में यहाँ पर एक दिगम्बर जैन मन्दिर है जिसे १९१३ में आरा के रईस प्रभुदास जी ने बनवाया था। इसमें तीन सुन्दर मूर्तियाँ विराजमान हैं। मूलनायक चंद्रप्रभु स्वामी हैं। कहा जाता है कि प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर पर वर्तमान में श्वेताम्बरों का अधिकार है। चैत्र कृष्णा पंचमी को यहाँ वार्षिक मेला लगता है।

क्षेत्र कुछ ज्यादा विकसित या विकासशील नहीं है और जब तक चंद्रप्रभु मंदिर एवं चंद्रपुरी के आस-पास के टीलों के खुदाई बाद प्राचीन साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते तब तक निस्संदेह इसे ही भगवान् चंद्रप्रभु की जन्म भूमि शतशः नहीं कहा जा सकता; हाँ श्रद्धा से माना और पूजा अवश्य जा सकता है। कुछ प्रतीकों से चिन्हित किया जा सकता है कि यहाँ पहले कोई विशाल नगरी रही है जो गंगा में बाढ़ आने के कारण ढहती रही और आज लगभग निःशेष है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंद्रपुरी के मन्दिर एवं मूर्ति में वास्तु सम्बन्धी कई कमियाँ हैं। इसकी व्यवस्था बाबू प्रभुदास ट्रस्ट आरा करता है। यहाँ पर आचार्य श्री सन्मतिसागर जी के पधारने पर श्रावकों ने एक विधान किया तथा भव्य शोभा यात्रा का आयोजन किया गया। जिसमें कई श्रावकों ने भाग लिया।

रथयात्रा के मन्दिर पहुँचने के साथ ही आचार्य संघ ने भगवान् श्रेयांसनाथ की जन्म भूमि सिंहपुरी की ओर प्रस्थान किया।

卐 卐 卐 卐 卐

तीर्थंकर श्रेयांसनाथ

सिंहपुरी जिसे वर्तमान में सारनाथ के नाम से जाना जाता है; का वर्णन करने के पूर्व यहाँ करोड़ों वर्षों पूर्व जन्म लिये तीर्थंकर प्रभु श्रेयांसनाथ का वर्णन करना ज्यादा उचित समझता हूँ। प्रस्तुत है उनके जीवन की झलकियाँ—

बात उस समय की है जब सिंहपुर नगर में इक्ष्वाकुवंशीय राजा विष्णु राज्य करते थे। उनकी महादेवी का नाम सुनन्दा था। स्वर्ग से आकर एक इन्द्र ने रानी सुनन्दा के गर्भ में प्रवेश किया। उस समय सुनन्दा ने सोलह स्वप्न देखे। प्रातः होते ही उन्होंने महाराज विष्णु से स्वप्नों का फल सुना, जिससे वह बहुत पुलकित हुईं। उसी समय देवों ने आकर राजा-रानी को वस्त्राभूषण समर्पित कर उन्हें नमस्कार किया। यह गर्भस्थ शिशु का ही प्रभाव था, जो उसके गर्भ में आने के पूर्व से ही पन्द्रह माह के लिये रत्न वृष्टि प्रारम्भ हो गयी। राजा विष्णु के आंगन में प्रतिदिन बारह करोड़ रत्नों की वर्षा होने लगी। कई देवियाँ माता की सेवा में उपस्थित हो गई।

फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में माता सुनन्दा ने पुत्र रत्न उत्पन्न किया। उस समय अनेक शुभ शकुन हुये। देवों ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरु पर्वत पर ले जाकर बालक का जन्माभिषेक किया तथा नाम "श्रेयांस" रखा।

जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी भगवान् श्रेयांसनाथ, भगवान् शीतलनाथ के बाद सौ सागर छ्यांसठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर बीत जाने पर भूमि तल पर अवतरित हुये थे। इनके जन्म के पहले आधे (अर्द्ध) पल्य तक धर्म का विच्छेद रहा। इनकी आयु चौरासी लाख वर्ष की थी, ऊँचाई अस्सी धनुष (३२०) की थी एवं रंग सुवर्ण के समान तथा चिह्न गैंडा था।

जब इक्कीस लाख वर्ष बीत गये, तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। राज्य पाकर उन्होंने सुचारु रूप से प्रजा का पालन किया। वे अपने बुद्धि-बल से निरन्तर दुष्टों का निग्रह एवं सज्जनों का अनुग्रह करते थें। योग्यकुलीन कन्याओं के साथ उनका परिणय हुआ। जिससे उनका राज्यकाल सुख से व्यतीत होता गया। कई बार देवगण भी तरह-तरह के विनोदों से उन्हें प्रसन्न करते रहते थे। इस तरह उन्होंने बयालीस लाख वर्ष तक राज्य किया।

तदनंन्तर एक दिन बसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर उन्हें वैराग्य हो गया, जिससे उन्होंने दीक्षा धारण कर घोर तप करने का निर्णय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की। सभी देवों ने दीक्षा कल्याणक मनाया। भगवान् श्रेयांस-नाथ श्रेयस्कर नामक पुत्र को राज्य सौंपकर "विमलप्रभा" पालकी पर आरूढ़ हो मनोहर नामक उद्यान में पहुँचे।

वहाँ उन्होंने दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञापूर्वक फागुन कृष्णा एकादशी को जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। तीसरे दिन चार ज्ञान के धारी भगवान् आहार की इच्छा से सिद्धार्थनगर में गये। वहाँ राजा नन्द ने उन्हें नवधाभक्ति पूर्वक आहार दान दे कर पंचाश्चर्य प्राप्त किये।

पुनः वन में जाकर भगवान् ने दो उपवास ग्रहण कर ध्यान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगाकर क्षपक श्रेणी मांडी ओर माघ कृष्णा अमावस्या को केवल ज्ञान प्राप्त किया। कुबेर ने समवशरण की रचना की। कमल-युक्त सिंहासन पर भगवान् बीचों-बीच अंतरिक्ष में विराजमान हुये। उन्होंने अपनी दिव्य वाणी के प्रभाव से कई जीवों को मोक्ष मार्ग प्रदान किया। प्रभु ने कई देशों में विहार कर सम्पूर्ण लोक में अहिंसा धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

आचार्य गुणभद्र ने लिखा है—उनके मुनिसंघ में सतत्तर गणधर, तेरह सौ ग्यारह श्रुत केवली, अड़तालीस हजार दो सौ शिक्षक, छह हजार अवधिज्ञानी, छह हजार पाँच सौ केवलज्ञानी, ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धि धारी, छह हजार मनःपर्यय ज्ञानी तथा पाँच हजार वादी मुनि थे। लाखों नर-नारी और असंख्यात देवों से युक्त होकर भगवान् विहार करते थे।

वे आयु के अंत में श्री सम्मेदशिखर जी पहुँचे, जहाँ उन्होंने एक माह तक योग धारण कर सभी कर्मों को नाश कर श्रावण शुक्ला पूर्णमासी के दिन धनिष्टा नक्षत्र में संध्या काल में मुक्ति प्राप्त की और संसार के सम्पूर्ण बंधनों को नष्ट कर दिया।

卐 卐 卐 卐 卐

कल्याणक भूमि सिंहपुरी

भगवान् श्रेयांसनाथ के चार कल्याणकों से विभूषित सिंहपुर का भव्य मंदिर आकर्षक एवं मनोज्ञ है। इसमें श्रेयांस प्रभु की श्याम वर्णी मूर्ति विराजमान है। प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् १८८१ में मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी शुक्रवार को पभोषा पर्वत पर मूर्ति की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। मूर्ति की ऊँचाई ढाई फीट है, जिसमें गैड़े का चिह्न बना हुआ है। एक श्वेत वर्णी प्रतिमा भी विराजमान है, यह भी श्रेयांसनाथ प्रभु की है। वेदी अत्यन्त कलापूर्ण एवं मनोज्ञ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। मुख्य वेदी के बगल में नंदीश्वर जिनालय का फलक है जिसमें ६० प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं।

जैन मन्दिर के सन्निकट १०३ फीट ऊँचा एक स्तूप है, इसे सम्राट अशोक द्वारा निर्मापित कहा जाता है। भगवान् श्रेयांसनाथ की जन्म नगरी होने के कारण स्मृति स्तम्भ के रूप में इसका निर्माण हुआ जान पड़ता है। स्तूप के ठीक सामने सिंह द्वार बना हुआ है जिसके दोनों स्तम्भों पर सिंह चतुष्क बना हुआ है। सिंहों के नीचे धर्म चक्र है, जिसके दायीं ओर बैल और घोड़े की मूर्तियाँ है।

उपरोक्त पुरातात्त्विक सामग्री से प्रतीत होता है कि यह जैनों के प्रतीक चिह्न हैं। प्रथम तो यह नगर भगवान् श्रेयांस की चार कल्याणक स्थली है। जिसमें केवल ज्ञान भी एक कल्याणक है। केवली तीर्थंकर प्रभु जब विहार करते हैं तब उनके आगे धर्म चक्र प्रवर्तमान रहता है। वृषभ भगवान् आदिनाथ का चिह्न है, घोड़ा भगवान् संभवनाथ का चिह्न है तथा सिंह भगवान् महावीर का चिह्न है। अगर कहीं अति प्राचीन साहित्य या अवशेष प्राप्त होंगे तो संभव है यह स्थान भगवान् महावीर की देशना स्थली भी सिद्ध हो सकता है।

वर्तमान राष्ट्रीय मुद्रा में चिह्नित होने वाला सिंह भगवान महावीर का पहचान चिह्न है। राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे में स्थित चौबीस आरों वाला अशोक चक्र, अशोक चक्र नहीं तीर्थंकर चक्र है, जो चौबीस तीर्थंकरों का प्रतीक है अथवा देशना काल में उनके आगे चलने वाले धर्म चक्र का प्रतीक है। सम्राट् अशोक पहले जैन धर्म का अनुयायी रहा है। बाद में उसने किन्हीं कारणों से बौद्ध धर्म स्वीकार किया होगा।

जैन मन्दिर और समवशरण का तुलनात्मक अध्ययन करने पर कहा जा सकता है कि निर्मित होने वाले मंदिरों को समवशरण का रूप देने का पूरा प्रयास रहा होगा। किन्तु सीमित स्थान में विशाल समवशरण का रूप दे पाना ज्यादा संभव नहीं हुआ। अतः सम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशरण की अनेक मांगलिक वस्तुओं को स्वतंत्र रूप से भी बनाया जाने लगा, जैसे मानस्तम्भ, उच्च द्वार, परकोटा आदि। ऐसी रचनाओं में स्तूप का भी अपना स्थान है। देश के विभिन्न स्थानों में उत्खनन से अब तक कई स्तूप प्रकाश में आये हैं। कई स्तूप जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है तथा कई शासन एवं समाज की लापरवाही से निरन्तर ह्रास की ओर हैं।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि तीसरी सदी में स्तूप निर्माण का कुछ अधिक प्रचलन रहा है। जैन शास्त्रों में दस प्रकार के स्तूपों का विवरण प्राप्त होता है—लोकस्तूप, मध्यलोक स्तूप, मंदरस्तूप, कल्पवासी स्तूप, ग्रैवेयक स्तूप, अनुदिश स्तूप, सर्वार्थ सिद्धि स्तूप, सिद्ध स्तूप, भव्यकूट स्तूप और प्रमोद स्तूप। ये स्तूप तत्त्व बोध प्राप्ति में कारण माने गये हैं। इसी कारण उनका निर्माण होता रहा। पश्चात्वर्ती काल में प्रबोध स्तूप निर्मित होने लगे जो तीर्थंकरों, गणधरों एवं मुनियों के स्मारक के रूप में प्रचलित हुये। ऐसे स्तूप मथुरा, देवगढ़ आदि स्थानों पर उपलब्ध होते हैं।

यहाँ जो स्तूप है, हो सकता है वह सम्राट् देवानांप्रिय सम्प्रति का बनवाया हुआ हो। इसका प्रमुख कारण है इस नगर का प्रागैतिहासिक विवरण। दूसरा कारण है "देवानां प्रिय" यह जैन श्रावकों के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है और इसीलिये शोधकर्त्ताओं को संदेह है कि इसे सम्राट् अशोक ने बनवाया या अन्य किसी ने।

卐 卐 卐 卐 卐

महात्माबुद्ध

सारनाथ में उपलब्ध अधिकांश पुरातत्त्व सामग्री बौद्ध सम्बन्धित है कहना सर्वथा भ्रम पूर्ण है, क्योंकि कुछ उपलब्ध सामग्री स्वयं अपने को जैनों का सिद्ध करती है और अगर वह बौद्धों से संबंधित भी मानी जाये, तो तब के हिसाब से मानी जाये जब बौद्ध स्वयं जैन मुनि थे। प्रस्तुत है मेरा स्वतंत्र लेख—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय जीवन, साहित्य एवं दर्शन के क्षेत्र में जितना प्रभाव भगवान् महावीर का है कुछ उतना ही गौतम बुद्ध का भी। धर्मानन्द कौशाम्बी ने अपनी "पार्श्वनाथ का चातुर्मास धर्म" पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि महात्मा बुद्ध ने पार्श्वनाथ द्वारा उपदेशित चार यामों का अपने धर्म में समावेश किया। चातुर्याम् का अर्थ अहिंसादि चार यम (नियम) हैं तथा महात्मा बुद्ध भी इसी अर्थ को स्वीकार करते थे, ऐसा दीघनिकाय के पासादि सुत्त में निबद्ध बुद्ध के इन शब्दों से सिद्ध होता है—"हे चुन्द अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक (साधु) कहेंगे कि श्रमण (मुनि) मौज उड़ाते हैं। उनसे कहो कि—मौज या विलास चार प्रकार के हैं। पहली, कोई अज्ञ पुरुष प्राणियों को मारकर मौज उड़ाता है। दूसरी, कोई पुरुष चोरी करके मौज उड़ाता है। तीसरी, कोई व्यक्ति झूठ बोलकर मौज उड़ाता है। चौथी, कोई व्यक्ति उपभोग्य वस्तुओं का यथेष्ट लाभ (उपयोग) कर मौज उड़ाता है। ये चार मौंजें हीन, गंवार, पृथग्जन-सेवित, अनार्य एवं अनर्थकारी है।" जैन श्रमण कभी भी मौज नहीं उड़ाते, वे अपनी आत्मा का ध्यान कर मौज में रहते हैं।

आठवीं सदी के दिगम्बराचार्य देवसेन के अभिमतानुसार महात्मा बुद्ध प्रारम्भ में जैन थे। जैनाचार्य पिहितास्रव ने सरयू नदी पर अवस्थित पलास नामक ग्राम में पार्श्व के संघ में उन्हें दीक्षा दी थी और उनका नाम बुद्धकीर्ति रखा था।[१] मज्झिम निकाय के महासिंह-नाद सुत्त में बुद्ध ने अपनी तपश्चर्य काल के संदर्भ में कहा है—"मैं वस्त्ररहित रहा, मैंने आहार अपने हाथों से किया, न लाया हुआ भोजन किया, न अपने उद्देश्य से बनाया हुआ भोजन किया, न निमंत्रण से जाकर भोजन किया, न बर्तन से खाया, न थाली में खाया, न घर की ड्योढ़ी में खाया, न खिड़की से लिया, न मलिन स्थान से

---

१. सिरि पास नाह तित्थे, सरयू तीरे पलासरयणत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो, महासुरो बुद्धक्रित्ति मुणी ।। —दर्शनसार-६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिया, न वहाँ से लिया जहाँ कुत्ता पास खड़ा था न वहाँ से लिया जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। न मछली, न माँस, न मदिरा, न सड़ा-माड़ खाया, न तुस का मैला पानी पिया। मैंने एक घर से भोजन लिया, सो भी एक ग्रास लिया या मैंने दो घर से भोजन लिया सो दो ग्रास लिये। इस तरह मैंने सात घरों से लिया, सो भी सात ग्रास, एक घर से एक ही ग्रास लिया। मैंने एक दिन में एक बार, कभी दो दिन में एक बार, कभी सात दिन में एक बार आहार ग्रहण किया। कभी पन्द्रह दिन भोजन नहीं किया। मैंने मस्तक दाढ़ी व मूँछों के केशलोंच किये। इस केशलोंच की क्रिया को जारी रखा। मैं एक बूँद पानी पर भी दयावान था। क्षुद्र प्राणी की भी हिंसा मुझसे न हो जावे, ऐसा सावधान था। इस तरह कभी तप्तायमान, कभी शीत को सहता हुआ भयानक वन में ध्यान मग्न रहता था। मुनि अवस्था में ध्यान में लीन रहता था।[२]

उपर्युक्त तथ्य जो बौद्ध ने कहे वे जैन श्रमण को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं पाये जाते। अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा के अनुसार गौतम बुद्ध के चाचा "वप्प" निर्ग्रन्थ रहते थे।[३] न्यग्रोधाराम में उनके साथ बुद्ध का विवाद हुआ।[४]

प्रो० जैकोबी ने मज्झिम निकाय में वर्तमान एक विवाद का उल्लेख किया है यह विवाद बुद्ध तथा सच्चक के बीच हुआ। सच्चक का पिता निर्ग्रन्थ था। अतः ऐसा जान पड़ता है कि वह भी बौद्ध का शिष्य होगा।

यह तो जैन और बौद्ध दोनों साहित्यों में उपलब्ध है कि बुद्ध

---

२. क्षु० शीतलप्रसाद : जैन बौद्ध तत्त्वज्ञान पृ० २०१।

३. अंगुत्तर निकाय की अट्ठकहा भाग २ पृ० ५५९।

४. एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुम्मि अथ खो वप्पो सक्को निगण्ठ सावगो इ०। अंगुत्तर निकाय, चतुष्क निपात महावग्गप्पसुत्त पृ० २१०-२१३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहले दिगम्बर साधु थे बाद में उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया । उन्होंने निर्ग्रन्थ वेश क्यों छोड़ा ? इस बारे में एक किवदंती सुनी जाती हैं कि वे संघ से अलग रहकर तप करने लगे । बहुत अधिक तप के बाद भी उन्हें केवलज्ञान नहीं हुआ और भगवान् महावीर को मात्र बारह वर्ष में ही केवलज्ञान हो गया । इससे उन्हे इस मार्ग में अनास्था उत्पन्न हो गई । दूसरी बात यह भी सुनी जाती है कि एक बार उन्हें बहुत जोर की प्यास लगी । पानी पीने की तीव्र इच्छा होने के कारण वे मन को न रोक पाये और पानी पीने के लिए एक बावड़ी की ओर चल पड़े । रास्ते में उन्हें कईं ठोकरें खानी पड़ीं ।

निर्ग्रन्थ मार्ग अत्यन्त कठिन होने से वे उसका परिपूर्ण पालन करने में असमर्थ थें अतः पूर्णरूपेण मार्ग छोड़ने की अपेक्षा उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया अर्थात् वस्त्र आदि धारण कर लिये तथा जिनसे अधिक कष्ट न हों ऐसे तपों को अपनाया । प्रारम्भ में तो उसका अलग धर्म के रूप में प्रचार न हुआ किन्तु कुछ समय बाद से ही उसके प्रचार ने तीव्रता पकड़ ली और आज भी बौद्ध धर्म स्वतंत्र रूप से हमारे सामने हैं ।

卐 卐 卐 卐 卐

सारनाथ की सार्थकता

वैसे तो भगवान् श्रेयांसनाथ की जन्मस्थली का नाम शास्त्रों में सिंहपुरी ही मिलता है, परन्तु जो सारनाथ शब्द है वह भी कालांतर में भगवान् श्रेयांसनाथ या महावीर के कारण से पड़ा होगा ।

प्रथम—भगवान् श्रेयांसनाथ का एक नाम श्रेयांसनाथ या श्रेयोनाथ भी है । संभव है किसी काल में क्षेत्र संबंधी विवाद या क्षेत्र का लोप न हो जाये ऐसा सोचकर किन्ही विशिष्ट महानुभाव ने इसका नाम परिवर्तित कर श्रेयोनाथ रखा हो जो अपभ्रंश होते-होते श्रेयनाथ से शेरनाथ और शेरनाथ से सारनाथ हो गया हो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय—जैनाचार्यों ने ज्ञान को सारभूत कहा है । यहाँ श्रेयांसनाथ भगवान् को ज्ञान का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त हुआ था, इसलिये भी इस स्थान का नाम सारनाथ नाम पड़ा हो सकता है ।

तृतीय—संभव है भगवान् महावीर का यहां विहार व प्रवास हुआ हो, उस समय इसका नाम शेरनाथ अर्थात् जिनका चिह्न सिंह है ऐसे महावीर या सारनाथ अर्थात् ज्ञान के स्वामी रखा हो ।

अस्तु, जो भी हो; किन्तु इस बात में संदेह का स्थान कम ही है कि यह जैन नाम है ।

सात

काशी को पदविहार

सारनाथ (सिंहपुरी) से मैदागिन धर्मशाला की ओर पद विहार हुआ । यहाँ लगभग सन् १८२४-२५ का एक विशाल जैन भवन व मन्दिर लगभग चौराहे पर स्थित है । कहते हैं लाला बिहारी लाल ने अपनी सम्पूर्ण संपत्ति लगाकर इस मन्दिर का निर्माण कराया था । उन्होंने अपनी सम्पूर्ण संपत्ति देकर सिद्ध कर दिया कि सर्वस्व दान भी होता है ।

यहाँ रात्रि विश्राम कर सुबह पंचायती मंदिर, (बुलानाला) पहुँचे । यहाँ तीन वेदियाँ हैं बीचोंबीच भगवान् पार्श्वनाथ विराजमान हैं । मूर्ति मनोज्ञ और काले पाषाण की है । श्वेताम्बर आगम कहते हैं कि यह वही स्थान है जहाँ भगवान् पार्श्वनाथ ने लकड़ी में जलते हुये नाग-नागिन को णमोकार महामंत्र सुनाया था ।

इस मंदिर का दर्शन कर एक चैत्यालय के भी दर्शन हुये जिसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्फटिक-पाषाण की भी एक सुन्दर मूर्ति है। यह चैत्यालय राजा दरवाजा गली में हैं।

卐 卐 卐 卐 卐

तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ

आचार्य संघ विभिन्न स्थानों से निकलते हुये भदैनी घाट की ओर अग्रसर हुआ। जैनागम कहता है कि भगवान् सुपार्श्वनाथ का जन्म यहीं हुआ था। प्रस्तुत है भगवान् सुपार्श्वनाथ का संक्षिप्त जीवन परिचय—

बनारस के राजा सुप्रतिष्ठित और रानी पृथ्वी सुख से समय व्यतीत कर रहे थे। एक रात रानी ने सोलह स्वप्न देखे तथा प्रातः उनका फल राजा से पूछा। स्वप्नों के फल से ज्ञात हुआ कि उनके यहाँ तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का जन्म होगा। इससे राजा-रानी सहित सभी को बहुत प्रसन्नता हुई।

इसी भाद्रपद शुक्ला षष्ठी के दिन एक देव रानी के गर्भ में आया। देव-देवियाँ माता-पिता की सेवा में प्रस्तुत रहने लगे। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान् का जन्म हुआ। इन्द्रों ने उनका जन्माभिषेक मेरुपर्वत पर किया तथा उत्सव मनाया और नाम सुपार्श्व रख माता-पिता को सौंप दिया।

प्रभु की आयु बीस लाख पूर्व की थी एवं शरीर की ऊँचाई दो सौ धनुष (८०० हाथ) थी। रंग हरा तथा चिह्न स्वास्तिक था।

पाँच लाख पूर्व बीत जाने पर उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। जब राज्य भोगते हुए उनकी आयु बीस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व की रह गई, तब उन्हें संसार से वैराग्य हुआ। लौकान्तिक देवों ने आकर वैराग्य की सराहना की। भगवान् मनोगति नामक शिविका पर आरूढ़ हो सहेतुक वन में पहुँचे, जहाँ उन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में दीक्षा धारण की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार ज्ञान के स्वामी प्रभु सुपाश्र्व का प्रथम आहार सोमखेट नगर के राजा महेन्द्र दत्त के यहाँ हुआ, देवों ने पंचाश्चर्य प्रकट किये। नौ वर्ष तक घोर तपस्या करने के बाद उन्हें सहेतुक वन में ही केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

कुबेर ने समवशरण की रचना की। उनके समवशरण में श्री बल आदि पंचानवे गणधर थे। दो हजार ग्यारह अंग एवं चौदह पूर्वों के ज्ञाता, दो लाख बयालीस हजार नौ सौ बीस शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, ग्यारह हजार केवलज्ञानी, पन्द्रह हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक, नौ हजार एक सौ पचास मन:पर्यय ज्ञानी एवं आठ हजार छह सौ वादी मुनि थे। कुल मिलाकर तीन सौ मुनिराज, मीनार्या आदि तीन लाख तीस हजार आर्यिकायें। तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें और असंख्यात देव तथा पशु भी उनके समवशरण में थे।

जब उनकी आयु का एक माह शेष रह गया तब उन्होंने सम्मेद-शिखर जाकर योग निरोध किया। ध्यान के प्रभाव से फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन उन्होंने सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया।

卐 卐 卐 卐 卐

सुपाश्र्वनाथ जन्मस्थली पर दो मन्दिर

भदैनी घाट में प्रमुख दो मन्दिर है प्रथम बाबू प्रभुदासजी, वाराणसी वालों का जो बाद में आरा रहने लगे। इसमें सुपाश्र्वनाथ भगवान् की प्रतिमा के साथ अन्य मूर्तियाँ भी हैं। इसका निर्माण १८५६ में हुआ था। प्रभुदास जी के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके पुत्र देवकुमार ने १८५६ में इसकी प्रतिष्ठा कराई।

दूसरा है बाबा छेदीलाल जी का। उन्होंने जहाँ प्राचीन चरण बने थे वहाँ एक मन्दिर स्थापित करके १८९५ में प्रतिष्ठा कराई। इसमें भगवान् सुपाश्र्वनाथ की सुन्दर मूर्तियाँ अधिक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों ही मन्दिर गंगा तट पर स्थित होने से अत्यन्त प्रभावक एक मनोज्ञ लगते हैं। यहाँ का प्रातःकालीन एवं सायंकालीन दृश्य देखने योग्य होता है।

卐 卐 卐 卐 卐

वाराणसी जनपद में जैन संस्कृति

वाराणसी नगरी में सैकड़ों जैन मूर्तियाँ जैनेतर मंदिरों में स्थापित है। कई मूर्तियाँ दीवालों में चिपका दी गई है, कई मूर्तियाँ वृक्षों के नीचे विराजमान है, कई मूर्तियाँ यत्र-तत्र अन्य प्रकार से दयनीय अवस्था में पड़ी हुई हैं। उन सभी तथ्यों को मैं अपनी कलम से न लिखकर श्री मति-पुष्पा सिंघई के लेख "वाराणसी जनपद में जैन संस्कृति" का बहु भाग प्रस्तुत कर रहा हूँ—

जहाँ तक वाराणसी जनपद में जैन संस्कृति का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में यह विशेष ध्यातव्य है कि अन्य संस्कृतियों का यहाँ इतना प्रबल प्रभाव रहा है कि साधारण लोगों की तो बात ही अलग है, इतिहासकार तक यह मानने को पूरी तरह तैयार नहीं थे कि अति प्राचीन काल अथवा आरम्भ से ही यह जैन संस्कृति का भी प्रमुख केन्द्र रहा है, जबकि जैन आगम और आगमेतर जैन साहित्य में उल्लिखित शताधिक प्रमाण तथा चार तीर्थंकरों की जन्मभूमि होना—ये सब तथ्य इस बात के प्रबल प्रमाण है कि वाराणसी जनपद जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है, किन्तु जब से यहाँ पुरातात्विक महत्त्व के प्रमुख केन्द्र राजघाट में उत्खनन से अनेक तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, आयागपट्ट आदि प्राप्त हुए हैं, तब से सभी इसे जैन संस्कृति का भी प्रमुख केन्द्र स्वीकार करने लगे हैं। पिछले दस वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ की जन्मस्थली भेलूपुर में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर के पुनर्निर्माण के समय नींव की खुदाई में छोटी-बड़ी अनेक प्राचीन मूर्तियाँ, स्तम्भ तथा अन्य पुरातात्विक महत्त्व की काफी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामग्री जो कि ईसा की पाँचवी शती से लेकर ईसा की बारहवीं शती तक की है इसके मिलने के बाद से सभी लोग वाराणसी को प्राचीन काल से ही समृद्ध जैन संस्कृति की समृद्धि को स्वीकार करने लगे हैं ।

राजघाट और भेलूपुर मंदिर से प्राप्त प्राचीन अवशेष रूप पुरातात्विक महत्त्व की सामग्री के अध्ययन से यहाँ के मन्दिर की प्राचीनता सिद्ध होती है ।

卐 卐 卐 卐 卐

काशी की प्राचीनता

काशी नगरी अत्यन्त प्राचीन है । जिन नगरियों की रचना इंद्र ने भगवान् आदिनाथ के काल में करवाई थी । उनमें काशी भी एक थी । काशी किन-किन महानगरों से जुड़ता था, प्रस्तुत है प्रकाश पुजारी का अध्ययन—"काशी मध्यवर्ती जनपद था, इसके पिछवाड़े में कौशल और वत्सल जनपद थे तथा उनके सामने मगध और विदेह जनपद थे । काशी से चारों ओर मार्ग जाते थे उत्तर में श्रावस्ती की ओर भी एक मार्ग जाता था । तक्षशिला, वेरजा, वैशाली, राजगृही, चम्पापुर, मथुरा, पाटलिपुत्र, ताम्रलिप्त आदि । कुछ समुद्री (नदी) एवं कुछ उभय मार्ग थे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

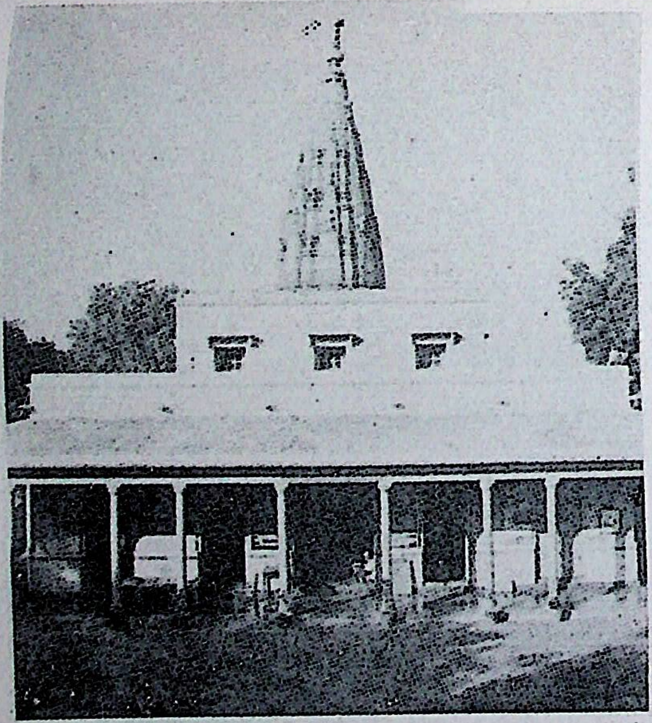

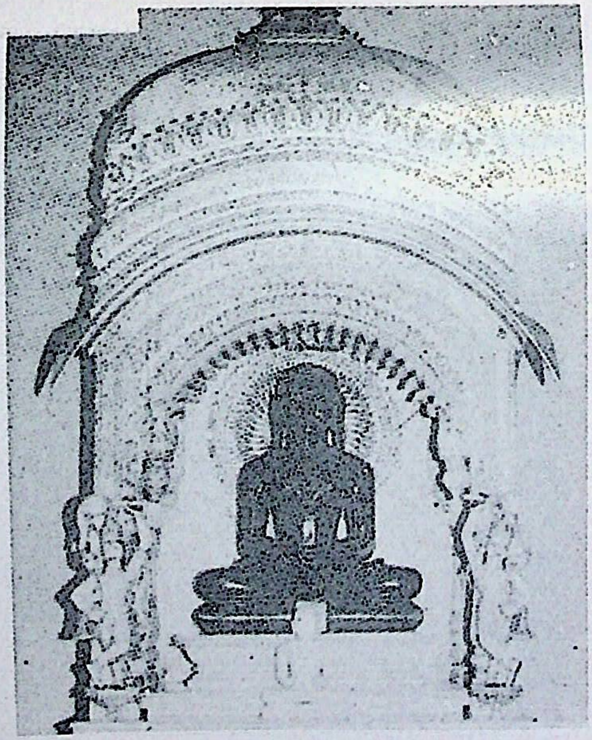

श्री १००८ भगवान श्री श्रेयांस नाथ जी की जन्म स्थली व मूलनायक प्रतिमा
सारनाथ. वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

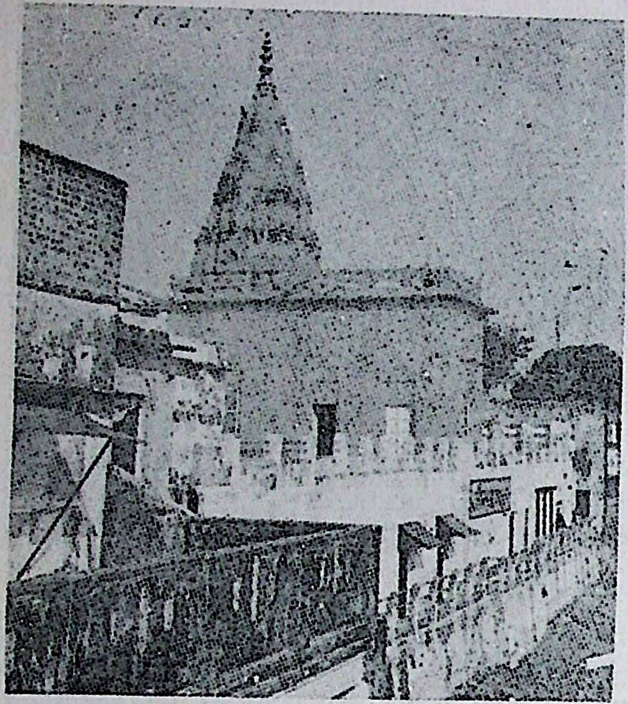

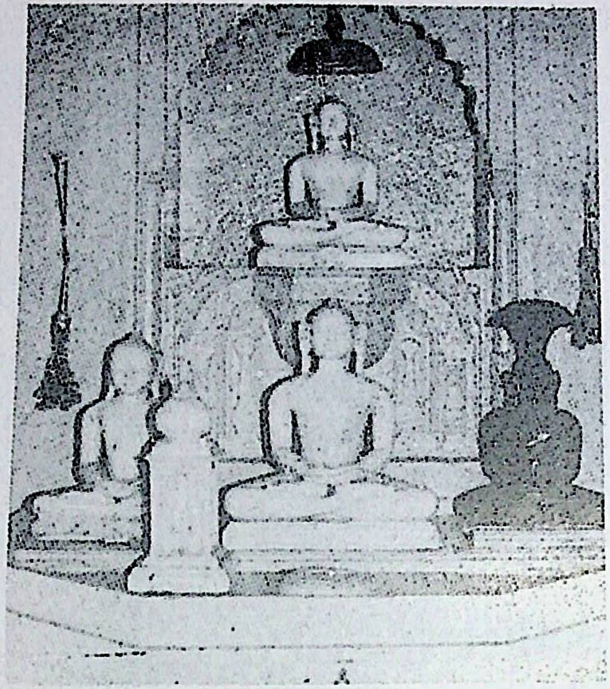

श्री १००८ भगवान श्री सुपार्श्वनाथ जी की जन्मस्थली व मूलनायक प्रतिमा
भदैनी. वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर व मूलनायक प्रतिमा हांथी बाजार, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

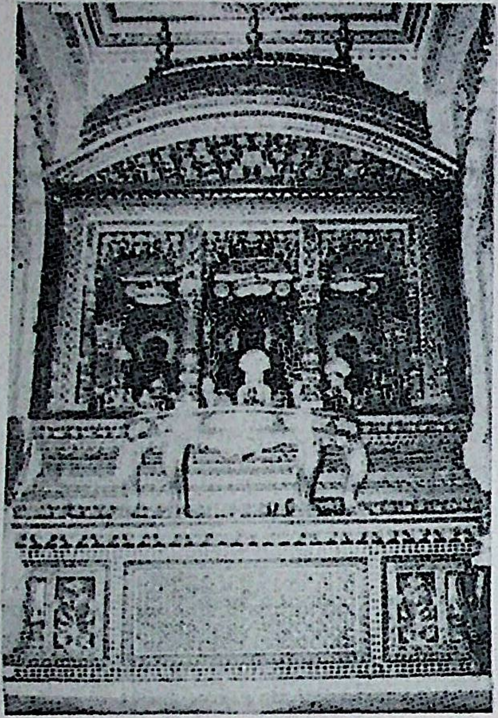

मैदागिन जैन मन्दिर व मूलनायक प्रतिमा मैदागिन, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

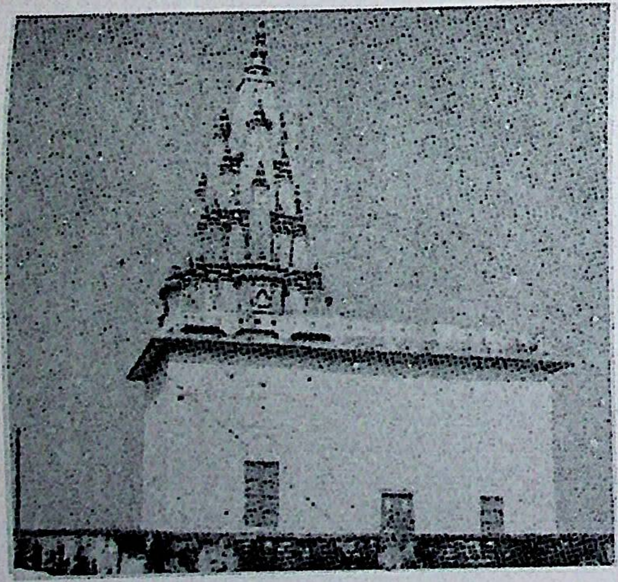

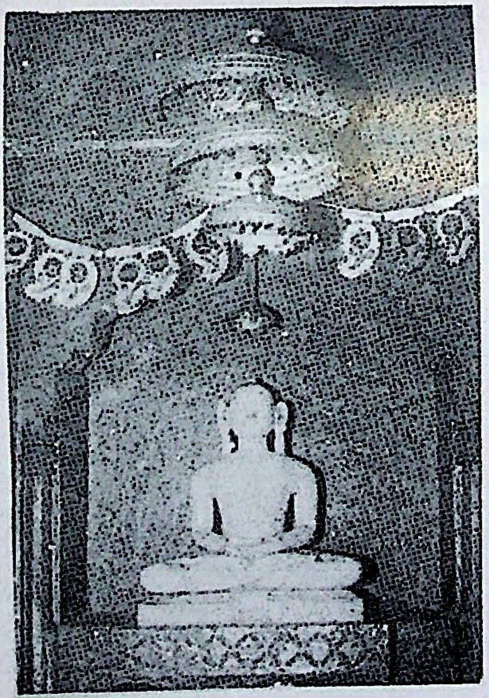

श्री १००८ भगवान श्री चन्द्रपुरी जी की जन्मस्थली व मूलनायक प्रतिमा
चन्द्रपुरी, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

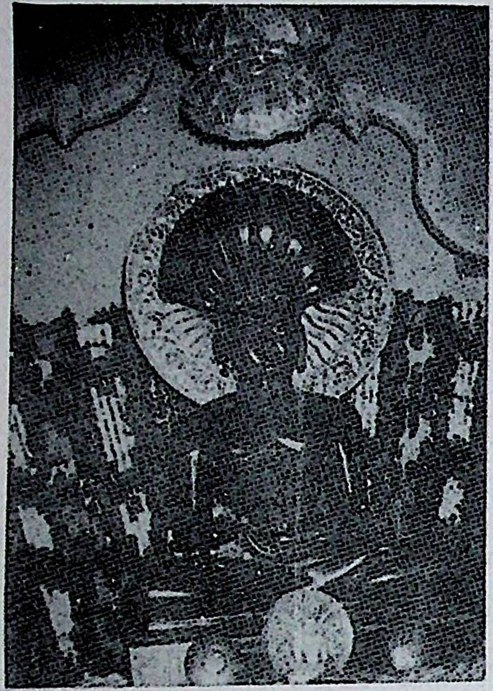

भगवान १००८ श्री पंचायती मन्दिर
मूलनायक प्रतिमा

श्री १००८ भगवान महाबीर स्वामी की
मूलनायक प्रतिमा, नरिया मन्दिर, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

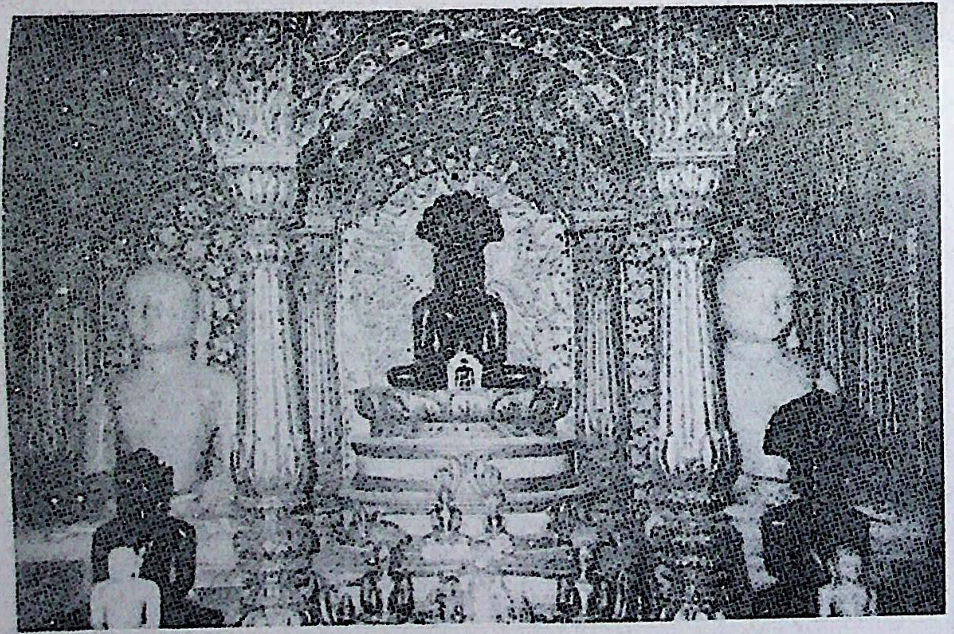

खड्ग सिंह उदयराज़ मन्दिर की मुख्य वेदी पर विराजमान प्रतिमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

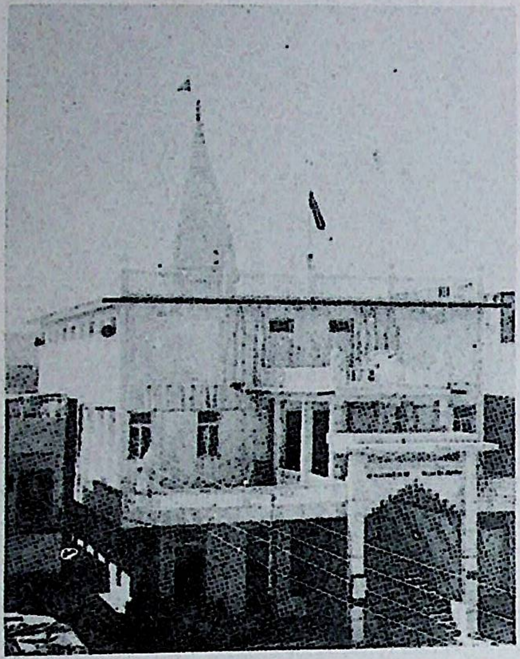

भेलूपुर जैन मन्दिर
भगवान श्री पार्श्वनाथ जी की जन्मभूमि

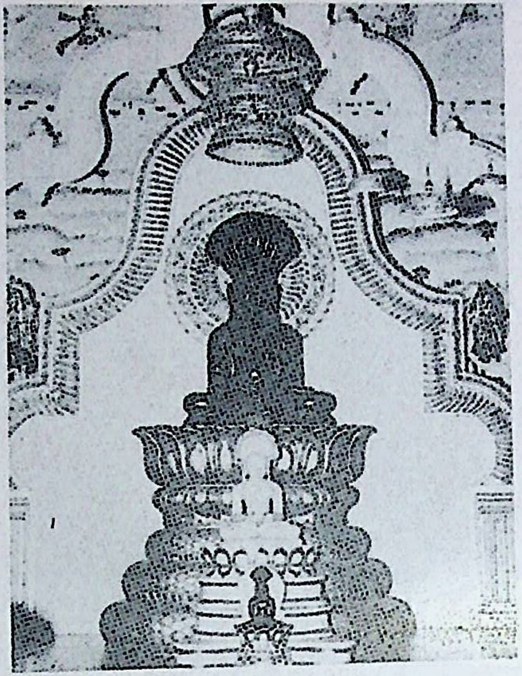

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर भेलूपुर में
प्रतिष्ठित १००८ भगवान पार्श्वनाथ जी की
भव्य प्रतिमा का एक मनोज्ञ दृश्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर के काल में जो मलय और नौ लिच्छवि राजाओं का कथन प्राप्त होता है, वे सभी काशी से सम्बन्धित थे। जब भगवान् को मोक्ष हुआ। तब यह सब भी पावा पहुँचे थे।

वाराणसी नामकरण

वाराणसी इस नामकरण के सन्दर्भ में यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं कि वरुणा और असि (अस्सी) इन दो नदियों के मध्य स्थित होने से इस नगरी का नाम वाराणसी हुआ। जैन महाकवि बनारदीदास ने भी लिखा है—

गंगमांहि आइ धसी द्वै नदी बरुना असी।
बीच बसी बनारसी नगरी बखानी है॥

वाराणसी से ही "बनारस" यह नाम प्रसिद्ध हुआ। किन्तु यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि प्राकृत जैन आगमों और अन्य कुछ जैन ग्रन्थों में "वाराणसी" इस शब्द के स्थान पर "वाणारसी" यह शब्द भी मिलता है और यह शब्द अधिक उपयुक्त इसलिए लगता है कि इस "वाराणसी" में 'वा' के बाद णा है और बनारस में भी "ब" के बाद "न" है। अतः इसी से बनारस शब्द उत्पन्न हुआ लगता है क्योंकि वाणारसी शब्द से "बनारस" शब्द बन सकता है, न कि वाराणसी से। क्योंकि वाराणसी में "वा" के बाद "रा" है फिर "ण" है। कई प्राचीन ग्रन्थों में वाराणसी शब्द भी उपलब्ध होता है।

जहाँ तक "काशी" शब्द का प्रश्न है, इस विषय में प्रसिद्ध है कि पुरुरवा वंश के राजा "काश" थे इन्हीं के वंशज काशी कहलाये और इसी आधार पर उनके रहने वाले देश का नाम "काशी" पड़ा। कुछ लोगों का मत है कि इस क्षेत्र में कुश (कांश) नामक घास के घने जंगल थे इस कारण इस जनपद का नाम काशी पड़ा। जो भी हो किन्तु यह नगरी चिरकाल से धर्म, संस्कृति, विद्या, कलाओं एवं महापुरुषों की जन्मदात्री रही है। यह निर्विवाद सत्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकीर्णक जैन मूर्तियाँ और उनका सांस्कृतिक महत्त्व

यहाँ प्रकीर्णक मूर्तियों से तात्पर्य यत्र-तत्र बिखरी हुईं अथवा जैनेतर मंदिरों आदि में विभिन्न देवताओं के रूप में मान्य और पूज्य जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों से है।

वाराणसी में ही नहीं अपितु भारत में अनेक गाँवों, शहरों आदि के तालाब, नदी के किनारे, पीपल या बरगद वृक्ष के नीचे तथा अनेक मढ़ियों/मंदिरों में यक्ष यक्षिणी की स्थापित खण्डित-अखण्डित मूर्तियाँ पूजी जाती हुई सहजता से देखी जा सकती है। हिन्दू परम्परा के बड़े-बड़े प्रसिद्ध कुछ तीर्थों की भी यही स्थिति है जिन्हें प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अनेक उल्लेख भी मिलते हैं।

जिनप्रभसूरि (१४वीं शती) जिन्होंने वाराणसी के चार विभाग किये हैं। उनमें प्रथम देव वाराणसी विभाग के अन्तर्गत लिखा है कि देव वाराणसी वह स्थान है, जिस क्षेत्र में विश्वनाथ का मंदिर है। उस समय यहाँ चौबीस तीर्थंकरों की पाषाणमय पट्ट-प्रतिमा पूजनीय थी। आपने अपने चतुर्विंशति महातीर्थ नाम संग्रह कल्प में लिखा है "वाराणस्यां विंश्वेश्वर मध्ये श्रीचन्द्रप्रभः" इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त चतुर्विंशति पट्टक में मूलनायक प्रतिमा चन्द्रप्रभ भगवान् की थी। काशी देश की राजधानी वाराणसी उस समय यवनों के अधिकार में थी।

सं० १६६९ में कवि जसकीर्ति लिखते हैं कि पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ जन्म स्थान तीर्थ के अतिरिक्त विश्वनाथ मंदिर के पास पाँच प्रतिमाओं में ऋषभदेव के पास नेमिनाथ है। अन्नपूर्णा के पास पार्श्वनाथ प्रतिमा है, खमणवसही में बहुत-सी प्रतिमाएँ भविजन पूजते हैं। वाराणसी में रक्तवर्ण की पार्श्वनाथ प्रतिमा की चन्दन, केसर, पुष्पादि से पूजा की। ऋषभदेव के पास चन्द्रप्रभ, वर्द्धमान चौमुख की पूजा की तथा भद्दिलपुर (भदैनी घाट) में सुपार्श्वनाथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की पूजा कर नौका द्वारा डेरे पर आये तथा सिंहपुरी व चन्द्रावती की यात्रा कर संघपति ने तीसरी कढ़ाई साधर्मीवत्सल कराया ।

卐 卐 卐 卐 卐

वाराणसी के अन्य मन्दिरों में स्थापित जैन मूर्तियाँ

ये तो विविध हिन्दू मन्दिरों में स्थित जैन मूर्तियों के लिखित प्राचीन विवरण हैं; किन्तु यहाँ कतिपय उन जैन मूर्तियों का विवरण प्रस्तुत है, जो वर्तमान में जैनेतर मंदिरों में स्थापित और पूजित है । इनके अध्ययन से वाराणसी में जैन संस्कृति की झलक स्पष्ट नजर आती हैं ।

वाराणसी के कई घाटों, मुहल्लों में स्थित जैनेतर मन्दिरों में आज भी कई तीर्थंकर दिगम्बर जैन मूर्तियाँ स्थापित हैं जैसे प्रहलाद घाट स्थित एक मंदिर में ऋषभदेव की खड्गासन तथा अन्य दसवीं शतीं की प्रतिमायें स्थापित हैं । इसी प्रकार ललिताघाट के मार्ग में सीढ़ियों पर दीवार में लगी हुई तीर्थंकर प्रतिमा काफी महत्वपूर्ण है । इनका वर्णन आगे किया गया है । एक अन्य भदैनी स्थित छेदीलाल जी के मन्दिर के पीछे गली में नीमवृक्ष के नीचे स्थित मढ़िया जो कि "नंपन वीर बाबा" के नाम से प्रसिद्ध है ।

भदैनी स्थित इस मूर्ति की ओर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया । दिगम्बर अवस्था में खड्गासन मुद्रा में लगभग ३-४ फुट ऊँचाई की यह मूर्ति काफी प्राचीन प्रतीत होती है । मस्तक़विहीन इस मूर्ति में बाद में किसी अन्य देवमूर्ति का सिर सीमेंट से जोड़ गया दिया है, जो स्पष्ट दिखाई देता है । पहले यह मूर्ति नीम वृक्ष के नीचे उत्तर दिशा की ओर मुख मुद्रा में स्थापित थी कि बाद में इसे किन्हीं कारणों से पूर्व की ओर मुखमुद्रा में जमीन के अंदर पैर ढककर स्थापित है । जिसे लोग सिन्दूर आदि लगाकर पूजते हैं । इस पर कोई लेख अथवा चिह्न दिखाई नहीं देता संभव है भूमि के अन्दर वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग में ये विद्यमान हों। लगभग १० वर्ष पूर्व प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डॉ॰ नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी जी को यह प्रतिमा डॉ॰ फूलचन्द्र प्रेमी ने दिखाई थी, तो उन्होंने भी इस दुर्लभ मूर्ति की पहचान अत्यन्त प्राचीन तीर्थंकर के रूप में की थी।

प्रहलाद घाट तथा ललिता घाट मन्दिरों में स्थापित जैन मूर्तियों का उल्लेख डॉ॰ मारुतिवंदन तिवारी, कमलगिरि आदि अनेक विद्वानों ने काशी के मन्दिर (पृ॰ २६१-२६२) नामक अप्रकाशित शोध प्रबंध में जिसको डॉ॰ विजय प्रकाश सिंह ने संचित किया है।

राजघाट के पास प्रहलाद घाट स्थित एक मन्दिर में खड्गासन मुद्रा में निर्वस्त्र स्थित मुख्य मूर्ति के दोनों ओर पद्मासन मुद्रा के अन्य तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अंकित हैं। मुख्य मूर्ति की पहचान आदिनाथ के रूप में कंधों पर लटकती हुई केशराशि से होती है। ऊपर मालाधारी दो विद्याधरों की आकृतियाँ भी बनी हुई हैं। इसका अनुमानित समय दसवीं शती पहले ही लिख चुके हैं। इसी मूर्ति के पास लगभग इसी काल की दो जैन युगल मूर्तियाँ भी हैं। स्त्री-पुरुष दोनों की गोद में बालक दिखाया गया है दूसरे में बालक केवल स्त्री की गोद में देखा जा सकता है। पुरुष के एक हाथ में फल प्रदर्शित हैं। दोनों ही चित्रों में स्त्री-पुरुष ललितासन दिखाये गये है, जिनके मध्य में वृक्ष एक विभाजक के रूप में उत्कीर्ण है। वृक्ष के ऊपर तीर्थंकर की छोटी आकृति तथा दोनों के ऊपरी सिरों पर मालाधारी गन्धर्वों की आकृतियाँ उत्कीर्ण है। इस विवरण से तीर्थंकर मूर्ति की पहचान बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के रूप में की जा सकती है तथा पूर्वोक्त लक्षणों के आधार पर इन यक्ष-यक्षिणी की पहचान गोमेद यक्ष एवं अम्बिका यक्षिणी के रूप में की जा सकती है। इसी शीतला मन्दिर में अन्य देवी-देवताओं की प्रायः सभी मूर्तियाँ जैन परम्परा की प्रतीत होती हैं। जिनका स्वतंत्र और विशेष अध्ययन होना आवश्यक है।

ललिता घाट की ओर सीढ़ियों से गंगा जाते समय बाहरी ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक मंदिर की बाहरी दीवार में नीचे लगी खड्गासन दिगम्बर मुद्रा वाली चिह्न रहित किन्तु प्रभामण्डल सहित भावपूर्ण मुद्रा में स्थित तीर्थंकर मूर्ति खण्डित है। इसके दोनों ओर चंवरधारी सेवक उत्कीर्ण है। इसके दोनों ओर की पत्तियाँ ऊपर दुन्दुभिवादक, दो मालाधारी गन्धर्वों की भी आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। मूल प्रतिमा के दोनों ओर ध्यान मुद्रा में तीर्थंकरों की दो लघु आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। कुछ मूर्तियाँ मार्ग में चबूतरे के नीचे के हिस्से में होने से दयनीय स्थिति में नष्ट हो रही हैं।

भदैनी स्थित छेदीलाल जी के प्रसिद्ध सुपार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर में पद्मासन मुद्रा में स्पष्ट शंख चिह्न युक्त १५.५×५ सेमी० माप की एक अति मनोज्ञ छोटी स्वतंत्र प्रतिमा विराजमान है। पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी एवं जिनेन्द्रवर्णी जी की साधना स्थली तथा धवला एवं जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष जैसे महान् सिद्धान्त ग्रन्थ के सम्पादन के कार्य का मुख्य केन्द्र इस मन्दिर के ही नित्य दर्शनार्थ हम लोग जाते थे। किन्तु पहले यह मूर्ति यहाँ नहीं थी, बाद में पता चला कि प्रो० खुशालचंद्र गोरावाला जो कि इस मन्दिर के दर्शनार्थ आते थे, ने अपने पास से रखी थी। मूर्ति मनोज्ञ एवं लगभग दसवी शती की है। बनारस नगर के लगभग प्रत्येक अंचल में दो-चार जैन मूर्तियाँ किसी न किसी रूप में अवश्य उपलब्ध होती हैं। कई मूर्तियों की पहचान मिटाने के लिये, उनके चिह्न, लिंग सिर या अन्य अवयव तोड़ दिये गये हैं। फिर भी उपलब्ध पुरातात्त्विक अवशेषों से ही यह सिद्ध हो जाता है कि बनारस में अति प्राचीन काल से जैन धर्म और संस्कृति का महत्त्व रहा है। यहाँ जैन संस्कृति समृद्ध और सबल हुई हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आठ

संग्रहालयों में प्राचीन जैन मूर्तियाँ

अनेक जैन मूर्तियाँ गंगा के तट पर स्थित राजघाट नामक स्थान पर ईस्ट इण्डियन रेलवे तथा पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों द्वारा की गई खुदाई से प्राप्त हैं—भारत कला भवन, वाराणसी हिन्दू विश्व विद्यालय एवं लखनऊ के शासकीय संग्रहालय में विद्यमान हैं । इस स्थान प्राप्त होने से गुप्तयुग में जैन धर्म की प्रचुरता सिद्ध होती है । कुषाण काल में तो जैन धर्म पहलेही सिद्ध हो चुका है । उपलब्ध मूर्तियाँ चुनार के पत्थर से निर्मित हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत हैं—

पार्श्वनाथ—तीर्थंकर पार्श्वनाथ की सप्तफणयुक्त मूर्ति खड्गासन मुद्रा में है । उनके दोनों ओर दो अन्य तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में दिखाये गये है । दाहिनी ओर पार्श्वरत्न लिये यक्ष तथा बायीं ओर बीजपुरा लिये पद्मावती स्थित है । ऊपर पुष्पवृष्टि करते हुये आकाशगामी देव दिखाये गये हैं । सर्पफण के ऊपर एक त्रिछत्र लगा अंकित है जिस पर ढोलक बजाते हुये एक देव विराजित है । मूर्ति की पीठिका पूर्ण विकसित कमल के फूलों तथा मुँह फेरे सिंहों से सुसज्जित है । चौकी के ऊपर बाईं ओर यक्षी के समीप पूजन मुद्रा में एक स्त्री दर्शायी गई है । संभवतः इस स्त्री ने ही इस मूर्ति की स्थापना कराई हो ।

शिलापट्ट (पाँच तीर्थंकरों की प्रतिमा युक्त)—(रजिस्टर नं० ४८, १८३ ई० । '||' चौ० १ फुट) जिस पर यक्ष-यक्षियों युक्त तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ दूसरी पंक्ति के मध्य दिखाये गये हैं । बालों की कंधे तक लम्बी केशराशि इनकी विशिष्ट विशेषता है, जो दिखाई गई है । तीर्थंकर आदिनाथ के दाहिनी ओर ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ की उनके लांछन गैंडा युक्त मूर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनी है, जिनकी जन्मस्थली काशी की सिंहपुर नामक नगरी है। आदिनाथ की बायीं ओर सर्पफण युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति ध्यानमुद्रा में बनी है। मूर्ति की ऊपरी पंक्ति में दाहिनी ओर आठवें तीर्थंकर चंद्रप्रभ की मूर्ति उनके चिह्न अर्द्धचन्द्र सहित उत्कीर्ण है। मूर्ति के बायीं ओर बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की मूर्ति उनके 'शंख' चिह्न सहित ध्यान मुद्रा में अंकित है। शिलापट्ट के निचले भाग पर जो पीठिका के सदृश है, वृक्ष के नीचे गोद में बालक लिये हुये जैन यक्ष-यक्षिणी उत्कीर्ण हैं। अगल-बगल में मनुष्य समुदाय इनकी आराधना कर रहा है। आकाशगामी देव ऊपर से पुष्प वृष्टि करते हुए दिखाई दे रहे हैं।

अब तक जैन मूर्तियों का अंकन, चित्रण आगायपट्टों, उकेरी मूर्तियों, उन्नत उकेरी मूर्तियों तथा सर्वतोभद्रिकाओं किया गया है तथा चौबीस तीर्थंकर युक्त शिला पट्ट भी प्राप्त होते है।

प्रस्तुत शिलापट्ट पर पाँच तीर्थंकरों में से तीन तीर्थंकर (चंद्रप्रभ, श्रेयांसनाथ, पार्श्वनाथ) की जन्मस्थली काशी रही है। प्रस्तुत शिलापट्ट में काशी से ही संबंधित इन तीर्थंकरों का समष्टि रूप से चित्रण किया गया तथा मूर्ति का उद्भव स्थान भी काशी है, दोनों बातें परस्पर पूरक हैं।

तीर्थंकर मूर्ति—कायोत्सर्ग मुद्रा में एक तीर्थंकर की मूर्ति हैं; जिसका नीचे का भाग घिस जाने से चिह्न भी लुप्त हो गया है। मूर्ति सुन्दर और कला-पूर्ण है जिसकी लम्बाई २ "४" चौड़ाई १०" है।

स्तम्भ में अजितनाथ प्रतिमा—स्तम्भ (रजिस्टर नं० ४९.५४ लम्बाई ३१, चौ० १०") जिस पर खड्गासन मुद्रा में अजितनाथ की मूर्ति उकेरी हुई है। नीचे पीठिका पर दो हाथी उत्कीर्ण हैं, जो अपनी सूड़ में पूर्ण विकसित सनाल कमल पकड़े हैं। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसका समय विद्वानों ने सातवीं सदी माना है।

इस प्रकार विद्वानों ने राजघाट को प्राचीन काशी का मुख्य स्थान माना है जहाँ से लगभग ८०० पूर्व से १३वीं शतीं ई० के बीच के अवशेष उत्खनन में विभिन्न स्तरों से प्राप्त हुये हैं। यहाँ से प्राप्त मुख्य उदाहरणों से शुंग कालीन तीन यक्ष आकृतियों वाली मूर्तियों तथा गुप्तकालीन मृण मूर्तियाँ एवं छठी से आठवीं शतीं ई० के मध्य की अजितनाथ, नेमिनाथ और महावीर—इन जैन तीर्थंकरों सहित तथा यक्ष-यक्षिणी सहित मूर्तियाँ मूर्त उदाहरणों की दृष्टि से काफी महत्व-पूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त कंदवा, मंझवां, सारनाथ में भी महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुये हैं तथा काशी के आस-पास के अन्यान्य क्षेत्रों से भी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हैं। भारत कला भवन, वाराणसी की तीर्थंकर महावीर (छठी शतीं) की पद्मासन मुद्रा में अत्यन्त मनोज्ञ और बड़ी प्रतिमा काफी महत्वपूर्ण और दुर्लभ मानी गई है।

राजघाट से प्राप्त कई मूर्तियाँ शोधनीय है। भारत कला भवन, काशी में कई प्रतिमायें अति प्राचीन हैं। सारनाथ के संग्रहालय में भगवान् विमलनाथ की नवीं शती की मूर्ति साधारण है। इस मूर्ति पर सूकर का चिह्न स्पष्ट है। मूर्ति मस्तक विहीन खड्गासन है। संपूर्णा-नन्द संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी के पुरातत्त्व संग्रहालय में भी दो प्राचीन तीर्थंकर प्रतिमायें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। एक पद्मासन प्रतिमा पर कोई चिह्न नहीं है। एक अन्य प्रतिमा खण्डित रूप में पार्श्वनाथ की है, जो खड्गासन मुद्रा में लगभग पाँच फुट रही होगी। अब खण्डित रूप में पादपीठ चरण और सर्पचिह्न मात्र अवशिष्ट है। यह संग्रहालय के बाहर असुरक्षित पड़ी है।

卐 卐 卐 卐 卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमर रहे जिन धर्म हमारा

बनारस की पवित्र अवनितल पर एक दिन कई तथ्यों को अपने में बटोरने वाला एक गीत लिखा था। गीत का मूलभाव है सभी जीव सुखी रहें, प्रस्तुत है—

अमर रहे जिन धर्म हमारा, जन-जन मन हर्षाये।
प्राणी मात्र हो सुखमय जग में, नभ अमृत वर्षाये ।।
जिनवर का जिनमत अपनायें, रागद्वेष को दूर भगायें।
ज्ञान, ध्यान, संयम अपनायें, वक्त पड़े सब इक हो जायें ।।
शांति, सत्य औ धर्म अहिंसा, जन मानस को भाये।
प्राणी मात्र हो सुखमय जग में, नभ अमृत वर्षाये ।।
अमर रहे... ।। १ ।।

सबका हो सम्मान हृदय में, सुखमय हो सब आत्मनिलय में।
घबरायें न कभी प्रलय में, समता भय हों देह विलय में ।।
झूठ मार्ग तज, सत्पथ चलना, सबके मन को भाये।
प्राणी मात्र हो सुखमय जग में, नभ अमृत वर्षाये ।।
अमर रहे... ।। २ ।।

स्याद्वादमय सारा जग हो, भाई चारा पग-पग पर हो।
भेदभाव को छोड़े सब जग, सरल शान्ति का पावन मग हो ।।
गंगा-सिंधु के कल-कल में, मन निर्मलता पाये।
प्राणी मात्र हो सुखमय जग में, नभ अमृत वर्षाये ।।
अमर रहे... ।। ३ ।।

हम सब मिलकर यह उच्चारें, जिओ और जीने दो धारें।
सदाचार नित ही आचारें, दानवता से कभी न हारें ।।
स्वाभिमान रख शिवपथ पर बढ़, आतम उन्नति पाये।
प्राणी मात्र हों सुखमय जग में, नभ अमृत वर्षाये ।।
अमर रहे... ।। ४ ।।

अमर रहे जिनधर्म हमारा, जन-जन मन वर्षाये।
प्राणी मात्र हो सुखमय जग में, नभ अमृत वर्षाये ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृहस्थाचार प्रवर्तन स्थली काशी

वर्तमान काल की अपेक्षा भगवान् वृषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक या प्रमुख प्रवर्तक कहा जाता है। जिस प्रकार आदिप्रभु को धर्म तीर्थ प्रवर्तक कहा जाता है। उसी प्रकार राजा श्रेयांस को दान तीर्थ प्रवर्तक कहा जाता है। जिस प्रकार इन दोनों तीर्थों का आपस में संबंध है उसी प्रकार एक तीसरा तीर्थ कहें या 'आवश्यक गार्हस्थ्य जीवन प्रवर्तक-कार्य'' कहें वह राजा अकंपन ने प्रारम्भ किया था और वह है स्वयंवर। स्वयंवर क्रिया विवाह जैसी एक विशिष्ट क्रिया है। जिस प्रकार बिना विवाह के गार्हस्थ्य जीवन नहीं चल पाता उसी प्रकार विवाह के बाद सुपुत्र श्रेष्ठ बालक, महापुरुष उत्पन्न न हो तो मोक्ष मार्ग भी नहीं चल सकता।

जिस प्रकार अयोध्या से धर्मतीर्थ का प्रवर्तन हुआ, हस्तिनापुर से दानतीर्थ का प्रवर्तन हुआ उसी प्रकार काशी से "गृहस्थ धर्म तीर्थ या स्वयंवर का प्रवर्तन हुआ।

जहाँ अयोध्या में धर्म संवारा और संजोया जा रहा था, जहाँ हस्तिनापुर में श्रावक धर्म का पुनरोत्थान किया जा रहा था, वहीं संस्कृति और गृहस्थाचार का प्रारम्भ काशी से हुआ था।

राजा अकंपन की पुत्री सुलोचना ने अपनी इच्छा से भरत के सेनापति जयकुमार को वरमाला पहिनाकर अपना पति स्वीकार किया।

स्वयंवर में भरत चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति सहित अन्य कई राजा भी उपस्थित थे। जब सुलोचना ने जयकुमार को अपना पति चुन लिया तब किसी धूर्त राजा ने चक्रवर्ती पुत्र को भड़का दिया जिससे जयकुमार एवं अर्ककीर्ति में कई पक्षधर राजाओं सहित युद्ध छिड़ गया।

अंततः जयकुमार ने चक्रवर्ती पुत्र को बंदी बना लिया और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विजय प्राप्त की। अर्ककीर्ति को अपनी गलती पर पश्चाताप हुआ। (यह कथानक महापुराण एवं जयकुमार चरित्र में बहुत सुन्दर रूप से लिखा गया है)।

भगवान् मल्लिनाथ के काल में होने वाले चक्रवर्ती पद्म ने भी काशी को ही अपनी राजधानी चुना था।

किन्हीं आचार्यों द्वारा दसवें चक्रवर्ती हरिषेण की जन्म भूमि काशी है ऐसा क़हा गया है और किन्हीं द्वारा हस्तिनापुर को चक्रवर्ती हरिषेण की जन्म भूमि कहा है।

बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के उद्धरण भी कुछ ऐसे ही प्राप्त हैं तथा यह भी ज्ञात होता है कि उन्होंने काशी को अपनी राजधानी भी बनाया था।

कृष्ण के मामा कंस अपने पूर्वभव में वशिष्ठ नामक मुनि थे। जो कठोर तप करते थे। हरिवंश पुराण के अनुसार उनका आगमन भी काशी में हुआ था। बाद में वे विहार करते हुए मथुरा पहुँचे थे जहाँ निदान पूर्वक मरण कर राजा उग्रसेन के यहाँ जन्म लिया। बाद में कृष्ण द्वारा मारे गये।

卐 卐 卐 卐 卐

आचार्य समन्तभद्र का चमत्कार

मैदागिन मंदिर से भदैनी घाट सुपार्श्वनाथ जन्मभूमि आते समय रास्ते में (बाँसफाटक पर) फटे महादेव की मूर्ति देखी। तुरन्त आचार्य भगवान् समन्तभद्र का स्मरण हो आया जिनके प्रभाव से पिण्डी फटी और भगवान् चन्द्रप्रभु प्रकट हुये। घटना क्रम प्रस्तुत है—आचार्यश्री समन्तभद्र के माता-पिता का नाम अब तक उपलब्ध नहीं हो पाया एक ताड़पत्रीय प्रति से यह जरूर ज्ञात होता है कि वे फणिमण्डल देशान्तर्गत उरगपुर के राजा के पुत्र थे। उनका जन्म नाम शांति वर्मा था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके गार्हस्थिक जीवन सम्बन्धी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अध्ययन एवं गहरे चिन्तन से कहा जा सकता है कि उन्होंने अल्पवय में ही मुनि दीक्षा धारण कर ली होगी। दीक्षा स्थान कांची (कांजी-वरम्) जान पड़ता है।

मुनि दीक्षा काल में उन्होंने ज्ञान-ध्यान एवं तप में रत रहकर तत्कालीन सम्पूर्ण वाङ्गमय का अध्ययन किया। आपकी मेघा शक्ति को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि आपके गुरु कितने प्रज्ञावान और दूरदर्शी रहे होंगे। दुर्भाग्य से उनका भी नाम उपलब्ध नहीं है। हाँ ! प्रमाणों के अभाव में कुछ लोग आ॰ उमास्वामी को जरूर आपका गुरु मानते हैं।

दुष्कर्म का उदय किसी को भी नहीं छोड़ता। आपको भी एक बार भयानक भस्मक व्याधि हो गई। आप जो भी खाते वह क्षण भर में ही राख हो जाता।

व्याधि को बढ़ता देख आपने अपने गुरु से निवेदन किया— गुरुदेव ! शरीर साथ नहीं दे रहा है, कृपा कर आप मुझे सल्लेखना दे दें ताकि मैं समाधि पूर्वक मरण कर सकूँ।

दूरदर्शी गुरुदेव बोले—नहीं, समन्तभद्र ! अभी मैं तुम्हें समाधि नहीं दूँगा। हाँ, यह आज्ञा जरूर देता हूँ, कि जाओ जैसे भी हो रोग नष्ट करो। व्याधि दूर हो जाने पर पुनः दीक्षा धारण कर लेना।

गुरु आज्ञा पाकर आचार्य समन्तभद्र वहाँ से चल दिये। वे जानते थे कि भस्मक व्याधि कैसे दूर होगी। अतः वे गरिष्ठ से गरिष्ठ भोजन प्राप्ति के लिये विभिन्न देशों और वेशों में घूमे। काशी के राजा को अपना परिचय देते हुये स्वयं कहा था—

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिन तनुर्लाम्बुसे पाण्डुपिण्डः,
पुण्ड्रोण्डे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट्।
वाराणस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुरङ्गस्तपस्वी,
राजन् ! यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरुतो जैन नैर्ग्रन्थवादी ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भस्म रमाकर शरीर को श्वेत किया, पुण्ड्रोण्ड में जाकर बौद्ध भिक्षु बना, दशपुर नगर में मिष्ट भोजी संन्यासी बना, वाराणसी में श्वेत वस्त्रधारी तपस्वी बना। राजन् ! आपके सामने यह दिगम्बर जैनवादी खड़ा है, जिसकी शक्ति हो, मुझसे शास्त्रार्थ कर ले।

एक समय की बात है वे पाटलिपुत्र, मालवा, सिंधु, ढक्क, काँची, विदिशा घूमते हुए काशी आ पहुँचे। यहाँ का भीमलिंग शिवालय प्रसिद्ध था यहाँ प्रतिदिन चालीस मन (किलो) का प्रसाद शंकरजी को चढ़ाया जाता था। जिसे सब व्यवस्थापक पुजारी वगैरह आपस में बाँटकर खा लिया करते थे।

समंदभद्र ने सोचा कि अगर कैसे भी यह भोजन मुझे मिलने लगे तो मेरी व्याधि दूर हो जायेगी। उन्होंने तुरन्त एक युक्ति सोची और व्य-वस्थापकों से कहा कि मैं सारा भोग शिवजी को खिला सकता हूँ।

पहले तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ, सोचने लगे क्या पत्थर की मूर्तियाँ कभी लड्डू-पेड़ा भी खातीं हैं ?

किन्तु कौतूहल वश एवं समन्तभद्र की दृढ़ता, वेशभूषा देखकर बोले—अच्छा, खिलाओ भोग शंकरजी को।

आज भोग सीधा शंकर जी को ही खाना था अतः कुछ ज्यादा ही स्वादिष्ट बना था। भोग (प्रसाद) सहित समन्तभद्र को अन्दर कर दिया और उन्होंने दरवाजे बंद कर लिये।

उन्हें भस्मक व्याधि तो थी ही अतः थोड़े ही समय में सम्पूर्ण भोग खा गये और दरवाजा खोलकर दिखा दिया कि देखो सम्पूर्ण भोग शिवजी खा गये।

प्रतिदिन उत्तमोत्तम गरिष्ठ पदार्थ खाने से उनका रोग शमन होने लगा, अतः भोजन बचने लगा। पुजारी तो पहले ही उनसे ईर्ष्या करते थे, अब उन्हें एक बहाना मिल गया, उन्होंने राजा से शिकायत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर दी कि भोग बचने लगा हैं और हमें तो दाल में कुछ काला नजर आता है।

राजा शिवकोटि ने गुप्तचर उनके पीछे लगा दिये। एक दिन जब वे शिवालय के अन्दर भोग खा रहे थे तभी अन्दर घुसे किसी गुप्तचर ने उनकी सारी क्रियायें देख लीं और राजा शिवकोटि से कहा—महाराज ! यह शिवजी का भक्त नहीं है और न ही उनको प्रसाद खिलाता है, यह स्वयं ही सब कुछ खा जाता है।

जब राजा ने यह बात सुनी तो वह आग बबूला हो गया। उसने तुरन्त शिवालय को सैनिकों से घिरवा दिया तथा स्वयं शिवालय में जाकर समन्तभद्र से शिवपिण्डी को नमस्कार करने को कहा—

आदरणीय समन्तभद्र बोले—राजन् ! मैं शिवपिण्डी को नमस्कार नहीं करता। यह शिवपिण्डी मेरा नमस्कार झेल (स्वीकार) नहीं सकती।

समन्तभद्र की बात सुनकर राजा एवं अन्य जनों का कौतूहल एवं आग्रह दोनों बढ़ गये। राजा ने लोहे की साँकलों से पिण्डी बंधवा (कसवा) दी ताकि समन्तभद्र के नमस्कार करने पर उसमें किसी प्रकार की हानि न हो। कई ब्राह्मण, शैव भक्तों सहित कुछ जैन भी वहाँ उपस्थित थे। जैन श्रावक स्वामी समन्तभद्र की रक्षा के लिये अर्हत् प्रभु से प्रार्थना करने लगे।

राजा आदि के पुनः-पुनः आग्रह पर स्वामी समन्तभद्र शिवपिण्डी के सामने प्रस्तुत हुये। उन्होंने आँख बंदकर स्वयम्भूस्तोत्र की रचना प्रारम्भ की। सर्वप्रथम ऋषभनाथ भगवान् और उनके बाद क्रमशः सभी तीर्थंकरों की स्तुति करना शुरु कर दी। जब वे आठवें चन्द्रप्रभु भगवान् की स्तुति में लीन हुये कह रहे थे—

चंद्रप्रभु चंद्र मरीचिगौरं, चंद्रद्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्दं महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त कषाय बन्धम्।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब अचानक एक जोरदार गर्जना हुई और शिवपिण्डी फट गई और उसमें से भगवान् चन्द्रप्रभ की अनुपम सुन्दर स्फटिक मणि की मूर्ति प्रगट हुई।

इस घटना को देखकर सभी की आँखें चौधियाँ गईं। राजा भी जिनधर्म से प्रभावित हुये बिना न रहा। सम्पूर्ण जनता जैनधर्म की जय-जयकार कर रही थी।

स्वामी समन्तभद्र की भस्मक व्याधि नष्ट हो चुकी थी। अतः उन्होंने पुनः दीक्षा ग्रहण कर ली। राजा शिवकोटि भी अपने छोटे भाई को राज्य दे तथा शिव मन्दिरों को छोड़कर मुनि हो गया।

आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी को वाराणसी सम्बन्धित बताने वाला एक श्लोक तिरुमकूडलुनरसीपुर के शिलालेख नं० १०५ में भी है—

समन्तभद्रस्संस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनीश्वरः।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः।।

अर्थात् वे भगवान् समन्तभद्र किसके द्वारा वंदनीय नहीं हैं जिन्होंने वाराणसी के राजा के आगे जैन धर्म से द्वेष रखने वाले वादियों को पराजित किया था अर्थात् सभी के द्वारा वंदनीय है।

बनारस के बनारसीदास

सुप्रसिद्ध आचार्य मानतुंग की जन्मस्थली भी यह काशी रही है ऐसा कुछ विद्वानों का अभिमत है।

कविरांज बनारसी दास के सम्बन्ध में तो स्पष्ट उल्लेख सर्वत्र प्राप्त है कि उनका नाम भी भगवान् पार्श्वनाथ की जन्मस्थली वाराणसी के होने से ही नाम बनारसी दास पड़ा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६८१ में जब उनके पिता खड्गसेन सम्मेदशिखर यात्रा को गये तो कुछ समय बाद वे भी माँ की आज्ञा से सम्मेदशिखर के लिये चल दिये तथा बनारस में भी कुछ दिनों तक रुके।

बनारसी दास जी का व्यापारिक सम्बन्ध तो बनारस से रहा ही उनका साहित्यिक सम्बन्ध भी बनारस से रहा है। उनके द्वारा रचित अपना जीवन चरित्र "अर्द्धकथानक" कई ऐतिहासिक तथ्यों को अपने में संजोये हुये है। किसी देव ने उनका "बनारसी दास" नाम चिरायु होने के लिये रखा था। उद्धृत हैं दो पंक्तियाँ 'अर्द्धकथानक' कीं—

जो प्रभु पार्श्वनाथ जन्म को गाँव, सो दीनो बालक को नाँव।
तो बालक चिरजीवी होय, यहि कहि लोप भयो सुरसोय।।

संभव है खड्गसेन की संतानें अधिक समय तक जीवित न रहतीं हों और उन्होंने बालक तेजचन्द्र को जीवित रखने के लिये ऐसा कोई उपक्रम किया होगा।

बनारसी दास जी ने चैत्र माह में नियम लिया कि जब तक बनारस से भगवान् पार्श्वनाथ का दर्शन नहीं करूँगा, तब तक के लिये इन-इन वस्तुओं का त्याग। उनकी भगवान् पार्श्व के प्रति कितनी भक्ति रही होगी। इस सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत है—

काशी नगरी में गये, प्रथम नहाये गंग।
पूजा पास-सुपास की, कीनी मनधर रंग।।
जे जेखन की वस्तु सब, ते-ते मोल मँगाई।
नेवज ज्यों आगे धरे, पूजे प्रभु के पाई।।
दिन दस रहे बनारसी, नगर बनारस माँहि।
पूजन करन द्योहरे, नित प्रभात उठ जाहिं।।

इस प्रकार बनारसी दास जी यात्रा में दस दिन बनारस में रहे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह स्पष्ट उल्लेख है। पू० क्षु० गणेश प्रसाद वर्णी जी द्वारा १०० वर्ष प्राचीन संस्कृत जैन महाविद्यालय भी इसी काशी में है। जिसमें पढ़कर सैकड़ों संस्कृत और प्राकृत के विद्वान् बने तथा आज भारत के कोने-कोने में धर्म प्रभावना कर रहे हैं। विद्यालय की वर्तमान स्थिति अत्यन्त दयनीय है।

साहित्यकारों की दृष्टि में भगवान् पार्श्वनाथ

मैंने भगवान् पार्श्वनाथ से सम्बन्धित कुछ दोहे लिखे थे—

पारस के प्रसाद से, शक्ति होय अपार।
पार्श्व-पार्श्व कहते चलो, मिलेगा भव का पार ।। १ ।।
तार पार्श्व दे पार्श्व जिन, पर की छोड़ूँ आस।
स्वयं तैर तारक बनूँ, पाऊँ स्वय प्रकाश ।। २ ।।
शुद्ध-बुद्ध चैतन्य का, सदा करूँ मैं ध्यान।
पार्श्व प्रभु मन में बसो, करूँ आत्म कल्याण ।। ३ ।।
पारस के दरबार में, भीड़ हो अपरम्पार।
देव सदा सेवा करें, कहें मंगलाचार ।। ४ ।।
हँसता मुख हँसते नयन, देखो इक पाषाण।
श्याम वर्ण मूरत प्रभु, श्रद्धा के भगवान् ।। ५ ।।

काशीनाथ, विश्वनाथ, अनाथों के नाथ, विघ्न हर, दुःख निवारक आदि कई उपनामों से पुकारे जाने वाले काशी के बाबा पार्श्वनाथ प्रभु जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र बिन्दु हैं। इसलिये सम्पूर्ण देश में भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ एवं मन्दिर सर्वाधिक मात्रा में हैं। अधिकांश अतिशय क्षेत्र भी प्रभु पार्श्व के नाम से जाने जाते हैं। प्रस्तुत है मेरा एक शोध आलेख जिसमें उनके जीवन के कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है—

दिगम्बर की अमर पताका अंनादि काल से दिग-दिगंत में फहरा रही है, फिर भी वर्त्तमान काल की अपेक्षा प्रथम तीर्थंकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषभ देव से दिगम्बरत्व एवं जैन धर्म की नींव पड़ी मानी जाती है। परम पिता ऋषभ देव जिन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है उनके बाद तेईस तीर्थंकर और हुए जिनमें महावीर भगवान् अंतिम हैं।

प्रमुख रूप से यहाँ हमें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ का जीवन परिचय जानना है।[१] डॉ० हर्मन जैकोबी भगवान् पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं। उन्होंने जैनागमों के साथ बौद्ध धर्म के प्रमाणों के प्रकाश में यह सिद्ध किया है कि भगवान् पार्श्व एक ऐतिहासिक पुरुष हैं। प्रो० जैकोबीने मज्झिम निकाय में वर्तमान एक विवाद का उल्लेख किया है यह विवाद बुद्ध तथा सच्चक के बीच हुआ था। सच्चक का पिता निर्ग्रन्थ था, किन्तु सच्चक स्वयं निर्ग्रन्थ नहीं था, क्योंकि उसने गर्वोक्ति की थी कि मैंने नातपुत्त (महावीर) को विवाद में पराजित किया। एक प्रसिद्ध वादी जो स्वत: निर्ग्रन्थ नहीं, पर उसका पिता निर्ग्रन्थ है, बुद्ध का समकालीन सिद्ध होता है तो उस निर्ग्रन्थ, सम्प्रदाय का प्रारम्भ बुद्ध के समय से कैसे हो सकता है ? वह सम्प्रदाय अवश्य ही बुद्ध के पूर्व स्थापित होना चाहिये। बुद्ध और महावीर का समय प्राय: एक ही है, प्रत्युत् बुद्ध महावीर से ज्येष्ठ हैं, अत: निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय भगवान् महावीर के पहले वर्तमान था, यह सिद्ध होता है।[२]

जैन पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार भगवान् पार्श्वनाथ तेइसवे तीर्थंकर हैं। यदुवंशी तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ जो कि बाईसवें तीर्थंकर हैं, इनसे तेरासी हजार छह सौ पचास वर्ष बाद पार्श्वनाथ ने जन्म लिया।[३]

---

1. That Parsha was a historical person, is now admitted by all as very probable.

   —The sacrad book of the EAST Vol. xiv Introduction–P.21.

२. पद्मकीर्ति : पासणाह चरिउ, डॉ० प्रफुल्ल कुमार मोदी लिखित प्रस्तावना पृ० ४३।

३. चौबीसी पुराण : पन्नालाल साहित्याचार्य पृ० २३३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् पार्श्वनाथ पर सैकड़ों वर्षों पूर्व लिखे गये जैन पुराण से ज्ञात होता है कि उनके जन्म होने के छह माह पहले से रत्नवृष्टि होने लगी, जो अनवरत उनके जन्म लेने तक अर्थात् पंद्रह माह तक चलती रही। सम्पूर्ण देश में सुख, समृद्धि व्याप्त हो गई। जन्म होने के बाद सौधर्म इंद्र ने करोड़ों देवों के साथ सबसे ऊँचे सुमेरु पर्वत पर उनका जन्माभिषेक किया। तदुपरान्त बालक का पार्श्वनाथ नाम-करण करके, उनके पिता काशीपति अश्वसेन एवं माता वरमाला (जिन्हें बामादेवी अथवा ब्रह्मादेवी भी कहते हैं) को सौंपकर मनोहर गीत वादित्रों के साथ नृत्य कर उनका जन्मोत्सव मनाया।

कुमार पार्श्व बचपन से औदासीन्य प्रवृत्ति धारण किये हुये थे। वे खेल, कूद जैसे कार्यों में भी गम्भीरता से विचार करते थे। सूर्य, चंद्र और फूलों की सुन्दरता को लज्जित करते हुये पार्श्व किशोरा-वस्था की ओर अग्रसर हुये।

किशोरावस्था में ज्ञान गोष्ठी, तत्त्वचिन्तन एवं संसारी जीवों को सुखी करने के भाव अधिक मुखरित हुये। वे अपने मित्रों को लेकर जब-तब दीन-दुःखी प्राणियों का निरीक्षण कर उन्हें सुख पहुँचाने का प्रयत्न करते। प्रयत्न करने के बाद भी जब कोई दीन दुःखी रह जाता तो वे सोचते—"**सच्चे ज्ञान के अभाव में कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं हों सकती। मैं अवश्य ही सत्य धर्म का प्रचार-प्रसार कर जीवों को परम सुख का मार्ग बताऊँगा।**"

भगवान् पार्श्वनाथ के युग में तापस परम्परा का प्राबल्य था। अज्ञान को ही सच्चा तप समझा जाता था। गृहस्थाश्रम में ही उन्होंने पंचाग्नि तप करते हुए कमठ को दया का उपदेश दिया और धूनी (अग्नि) में जलते हुए सर्प-सर्पिणी को नमस्कार महामंत्र सुनवा-कर (सुनाकर) उनका उद्धार किया।[४] नाग और नागिन मर कर

४. तओ भगवयाणियपुरिसवयणेण दयाविओ से पंच णमुक्कारो पच्चक्खाणं च पाडिच्छियं तेण। —चउपन्निमहापुरिसचरियं पृ० २६२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचनमस्कार मंत्र के प्रभाव से भवनवासी देवों के अधिपति घरणेन्द्र एवं पद्मावती हुये।[५] वह तपस्वी मरकर संवर नामक ज्योतिषी देव बना।[६]

बहुत दिन आये और गये अब पार्श्व युवावस्था की सीढ़ी पर पाँव रख चुके। जिस काम के उद्रेक से अच्छे-अच्छे योगी भी भटक जाते है उस कामोद्रेक को प्रभु ने युवावस्था में ही अपना दास बना लिया था। उनके सामने विवाह करने के लिये कितने ही प्रस्ताव रखे गये परन्तु वे उन प्रस्तावों को संसार चक्र समझकर नकारते गये। किसी तरह से भी वे सांसारिक विषय-वासना में न फँसकर सम्पूर्ण लोक के कल्याणार्थ योग धारण करना चाहते थे।

जब कुमार पार्श्व तीस वर्ष के हुए उस समय अयोध्या के राजा जयसेन की ओर से एक दूत भेंट लेकर आया। पार्श्वकुमार ने अयोध्या की विभूति के सम्बन्ध में जिज्ञासा अभिव्यक्त की तो दूत ने सर्वप्रथम अयोध्या नगरी के निर्माता ऋषभ देव के सम्बन्ध में वर्णन किया। भगवान् वृषभ का वर्णन सुनकर पार्श्वकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वे उसी समय विरक्त हो गये।[७]

भगवान् को वैराग्य हुआ जान, तुरन्त लौकांतिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की सराहना की। विमला (विशाला) नामक पालकी में बैठकर प्रभु अश्वत्थ (अश्ववन[८]) नामक उद्यान में गये जहाँ पंच-मुष्ठी केशलोंच कर सम्पूर्ण परिग्रहों का त्याग कर तप में लीन हो गये। माघ शुक्ला एकादशी[९] की यह तिथि उनके तथा अन्य सह दीक्षित ३०० (तीन सौ) राजाओं की दीक्षा दिवस के रूप में पूज्य हुई।

---

५. उत्तर पुराण : आचार्य गुणभद्र, ७३/११८-११९, पृ० ४३६-३७।
६. उत्तर पुराण : आचार्य गुणभद्र, ७३/११७, पृ० ४३६।
७. उत्तर पुराण : आचार्य गुणभद्र ७३/११९-१२५, पृ० ४३७।
८. तिलोयपण्णत्ति : आचार्य यतिवृषभ, ४/६६६, पृ० २२६।
९. उत्तर पुराण : आचार्य गुणभद्र, ७३/१२९, पृ० ४३७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टोपवास पूर्णकर[१०] भगवान् मुनिराज पार्श्वनाथ गुल्म खेट (द्वारावती) के श्रेष्ठ श्रावक-धान्यसेन (धनदत्त) के यहाँ पडगाहे गये और खीर का आहार हुआ।[११] अब मुनिराज पार्श्वनाथ संयम-साधना, तप-आराधना करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार करने लगे। एक समय विहार करते हुए भगवान् कलिगिरि नामक पर्वत के नीचे अवस्थित कादम्बरी नामक वन में गये, सरोवर के निकट ध्यानस्थ होकर खड़े हो गये। उस समय वहाँ पर घूमता-घामता महीधर नामक हाथी आया। भगवान् को देखते ही उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। जिससे वह भगवान् की अर्चना करने लगा। कलिगिरिकुण्ड सरोवर सन्निकट होने से वह स्थान कलिकुण्ड नाम से विश्रुत हुआ।[१२] कलिकुण्ड से विहार कर भगवान् शिवपुरी गये। कौसाम्ब वन में ध्यान मुद्रा में खड़े थे। उस समय अपने पूर्ण भव को स्मरण कर धरणेन्द्र वहाँ पर आया तथा धूप से रक्षा करने के लिये उसने भगवान् पर छत्र किया। जिस कारण उस स्थान का नाम अहिछत्र (अहिच्छत्रा) पड़ा।[१३]

प्रभु पार्श्वनाथ देश-देशान्तरों में विहार करते हुये वहाँ पहुँचे जहाँ उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी और प्रतिमायोग धारण कर ध्यान करने लगे। एक समय सम्बर[१४] (भूतानन्द[१५]) नामक देव आकाश मार्ग से निकला तो उसका विमान आकाश में ही स्थित हो गया। विमान स्थित हो जाने का कारण जानने के लिए उसने इधर-उधर

---

१०. समवायांग पृ० १४७, कल्पसूत्र-१५३, उत्तरपुराण ७३/१२८, पासणाह चरियं १३३।

११. उत्तर पुराण : आचार्य गुणभद्र, ७३/१३२।

१२. पासणाह चरियं : देवभद्र ३/ पृष्ठ १८४-१८७।

१३. पासणाह चरियं : देवभद्र ३/१८८, पार्श्वचरित्र-भावदेव सूरिकृत ६/१४५।

१४. उत्तर पुराण : आचार्य गुणभद्र ७३/१३८-१३७।

१५. पार्श्वनाथ चरित्र : आचार्य वादिराज १०/८८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखा तो भगवान् पार्श्व दिखे। उन्हें देखते ही उसे पूर्वभव के बैर का स्मरण हो आया और उसने अनेक प्रकार के कुवचन कहके खोटी विक्रिया से भयानक रूप दिखाये।

वह भगवान् को ध्यान से विचलित करने के लिये सिंह, हस्ती, रीछ, विच्छु, सर्प आदि विविध रूप बनाकर नाना प्रकार के कष्ट देने लगा। एक के बाद एक घनघोर यातनायें देने लगा। फिर भी भगवान् सुमेरू की तरह स्थिर रहे। अपने अडिग ध्यान से तनिक भी विचलित नहीं हुये, ऐसा देखकर खिसिया कर उसने गम्भीर गर्जना करते हुए अपार जल वृष्टि की। बहुत भयानक जल वृष्टि हो जाने पर भी भगवान् का ध्यान भग्न नहीं हुआ।[१६] तो वह व्यंतर देव बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ देने वाली हवा चलाने लगा। उस धूर्त ने जल बरसाकर सम्पूर्ण भूमि को जलमग्न कर दिया। उसने भयानक धूल उड़ाकर सम्पूर्ण आकाश को धूलमय कर दिया तो भी वह धूल प्रभु को छू भी न पाई अपितु वह स्वयं ही कर्मरूपी रज से बाँधा गया।[१७]

ऐसा भयानक उपसर्ग सात दिन तक चलता रहा तदनंतर भगवान् पर उपसर्ग हो रहा जानकर धरणेन्द्र अतिशीघ्र ही पद्मावती सहित वहाँ उपस्थित हुआ और उसने अपने फण को भगवान् के ऊपर फैला दिया[१८] तथा पद्मावती ने उन्हें अधर में उठा लिया। फिर कमठ का कुछ वश न चला और वह वहाँ से भाग गया।

चार माह छद्मस्थावस्था के उपरान्त भगवान् जिनेन्द्र ने शुक्ल ध्यान के प्रभाव से चार घातियाँ कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान् को केवलज्ञान हुआ जानकर सभी देव समूहों ने उनकी पूजा-अर्चना की। इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की। अपनी देशना देते हुये भगवान् ने कुरु,

---

१६. सिरि पासणाह चरिउ : ३/१९१-१९३, त्रिषष्टि-९/३/४८२, चउप्पन्न २६७।
१७. कल्याण मन्दिर स्तोत्र : आचार्य कुमुदचन्द्र, श्लोक ३१।
१८. स्वयंभू स्त्रोत : आचार्य समन्तभद्र, श्लोक १३२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौशल, काशी, सुम्ह, अवन्ती, पुण्ड्र, मालव, अंग, बंग कलिंग, पंचाल मगध, विदर्भ, भद्र, दशार्ण, सौराष्ट्र, कर्णाटक, कोंकण, मेवाड़, लाट, द्रविड़, कश्मीर, कच्छ, शाक, पल्लव, वत्स, आभीर आदि प्रदेशों में परिभ्रमण किया। भगवान् पार्श्वनाथ के तप, व्रत, संयम आदि तात्त्विक विषयों का जनमानस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वैदिक संस्कृति के उपासकों ने भी उन्हें अपनाया। भगवान् पार्श्व-नाथ के उपदेशों की झाँकी स्पष्ट रूप से उपनिषदों में भी आई है। प्राचीनतम उपनिषद भी पार्श्व के बाद के है।[१९] भगवान् पार्श्व के धर्म का विशेष प्रचार भारत के उत्तरवर्त्ती क्षत्रियों में था और उसका प्रमुख केन्द्र वैशाली था।[२०] शुभदत्तादि दस गणधरों ने उनकी देशना को प्रचारित किया। उनके संघ में सोलह हजार मुनि और अड़तीस हजार आर्यिकाओं सहित लाखों श्रावक श्राविकायें एवं देव-देवियों का समूह था।

अहिंसा सत्य अचौर्य और अपरिग्रह आदि प्रमुख सिद्धान्तों का प्रचार करते हुये प्रभु पांर्श्व सम्मेदशिखर पहुँचे और एक माह का योग नि्रोध कर श्रावण शुक्ला सप्तमी को मोक्ष पधारे। यह सम्मेद-शिखर आज भी पारसनाथ पर्वत का नाम से विख्यात है।

तीस वर्ष की अवस्था में दीक्षा लेकर, चार माह छद्मस्थ काल में रहकर प्रभु ने कुछ कम सत्तर वर्षों तक धर्म प्रचार किया और सौ वर्ष की आयु में ७७७ ई० पू० में मुक्ति प्राप्त की।

डॉ० जिम्मर का मत है कि "वे वर्द्धमान महावीर के निर्वाण के २४६ वर्ष पहले विद्यमान थे।[२१]" जैनागम भी लगभग इतना ही अंतर मानता है। महावग्ग में जिस वर्षावास का उल्लेख किया है,

---

१९. डॉ० राधाकृष्णन् : इण्डियन फिलासफी भाग-१, पृ० १४२।

२०. डॉ० विमला चरण लॉ : क्षत्रिय क्लान्स इन बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ८२।

२१. Zimmer H. Phylosophics of India (Kgan paul) 1953, Page 183.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह पार्श्वनाथीय परम्परा से प्रभावित होना चाहिये।[२२] भगवान् महावीर ने कहा था कि वे उस धर्म का प्रचार कर रहे हैं, जिसका पहले तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने किया था।[२३]

इस प्रकार कई तथ्यों पर भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन को कहने का सप्रमाण प्रयास किया है, किन्तु इस छोटे से लेख में बहुत ज्यादा नहीं लिख सका। हाँ लेख लिखते समय यह अवश्य महसूस हुआ कि भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक अंश पर स्वतंत्र शोधों (खोजों) की आवश्यकता है।

卐 卐 卐 卐 卐

पुरा-ऐतिहासिक पार्श्वनाथ जन्मस्थली

भेलूपुर को कुछ वर्षो पहले तक मात्र पाँच सौ वर्ष प्राचीन कहा जाता था। लेकिन मन्दिर के पुनर्निमाण को लकेर जब तोड़ा गया तब कितने ही ऐसे अवशेष प्राप्त होते हैं जो मन्दिर की प्राचीनता को १५०० वर्ष पीछे तक ले जाते हैं। क्षमावाणी १९८९ को नए मन्दिर की नींव रखी गई। मन्दिर निर्माण इतनी शीघ्रता से हुआ कि १३-१४ महिने में ही दीपावली सन् १९९० में पूर्ण हो गया। सत्येन्द्र मोहन जैन के लिखे अनुसार पुराना मन्दिर मिट्टी के ऊँचे टीले पर निर्मित था।[२४] इस मन्दिर की कुर्सी लगभग दस फुट ऊँची थी जो तोड़कर बाहर फेंकी गई। नीचे नींव में काफी पुरातात्विक सामग्री प्राप्त हुई। जिसमें से अधिकांश सामग्री संग्रहीत है।

श्री रिखब दास जी के अनुसार खुदाई में तीन परते निकालीं तीनों परतों पर अलग-अलग प्रकार का रंग किया हुआ था। इससे

---

२२. महावग्ग २-१-१।

२३. व्याख्या प्रज्ञप्ति ५१९-२२७।

२४. दि० जैन मन्दिर भेलूपुर का प्राचीन इतिहास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पूर्व में तीन-बार तोड़कर बनाया गया होगा।

पुरात्विक अवशेष मूलभूमि से दो फुट नीचे निकले। यहाँ एक ख़ड्गासन मनोज्ञ मूर्ति भी उपलब्ध हुई है। प्रकाश पुजारी का कहना है कि यह मूर्ति मन्दिर के तल घर की है। अन्य लोगों की मान्यता कुछ और है।

नींव से प्राप्त देव मूर्तियाँ, कुलिका के ऊपर का पत्थर, मन्दिर से लगे हुए स्तम्भ, हवादान आदि यह सिद्ध करते है कि यहाँ स्थित मन्दिर का कई बार विध्वंस हुआ। उस समय मुगलशासन का इतना भयानक प्रभाव रहा कि कोई श्रावक उन्हें पुनः सुरक्षित न कर पाया।

इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ११९४ में कुतुबुद्दीन ऐबक ने बनारस के मन्दिरों को लूटा (तोड़ा) और पुनः ११९७ में पुनः लूटा। इसके बाद मुसलमान अधिकारियों की सख्ती के कारण कुछ दशक तक मन्दिर पुनः न बन सके। इन्हीं परिस्थितियों में ध्वस्त मूर्तियाँ एवं मन्दिर भूसात हो गये।

यहाँ की खुदाई में सबसे प्राचीन प्राप्त मूर्ति है भगवान् पार्श्वनाथ की जो पाँचवीं या छठवीं शती की है। यहाँ का सम्पूर्ण पुरात्वात्विक अध्ययन किया है सत्येन्द्र मोहन जैन एवं प्रो० सागर-मल जैन ने।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने १००० मन्दिरों को नष्ट किया था तथा उनसे प्राप्त संपत्ति १४०० ऊँटों पर लादकर अपने देश भेजी थी। मुसल-मान अधिकारी मन्दिर न बनने देने को कटिबद्ध थे, किन्तु जब उनकी रज़िया मस्जिद सन् १२३६ से १२४० में बन चुकी तब वे कुछ ठण्डे पड़े। तत्पश्चात् पुराने मन्दिर अपने-अपने स्थानों पर बनने लगे। राजघाट जैन मन्दिर को किन्हीं कारणों वश पुनः नहीं बनाया गया। हाँ भेलूपुर को भगवान् पार्श्व की जन्म स्थली मानकर पुनः बनाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया होगा। इस विध्वंस के समय की मूर्तियाँ आज भी मन्दिर में विराजमान है। उनकी रोज पूजा अर्चना हो रही है।

मन्दिरों का दूसरा विध्वंस ई० सन् १४९४ से १४९६ तक पुनः किया सिकन्दर लोदी ने। उसके बाद पुनः यह मन्दिर बना। भारत के जैन तीर्थ पुस्तक में स्याद्वाद महाविद्यालय के अकलंक पुस्तकालय के एक हस्तलिखित ग्रन्थ "नित्य सामायिक प्रतिक्रमण पाठ" का हवाला देते हुए बताया है कि सन् १५६२ में भेलूपुर में पार्श्वनाथ मन्दिर था। १५९६ में जन्मे बनारसी दास भी इसकी पुष्टि करते हैं हो सकता है बनारसी दास जी के समय यहाँ पुनः मन्दिर निर्माण हुआ हो।

सभी तथ्यों के अध्ययन के निकर्ष में हम कह सकते हैं जहाँ वर्तमान भेलूपुर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है वहाँ १५-१६ सौ वर्षों में ३-४ बार पुनः निर्माण कार्य हो चुके। और अब पुनः यह नव निर्माण कार्य हुआ।

चन्द्रभान सिंघई के अनुसार स्तूप की संभावना बताई गई। सत्य हो सकता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के कुछकाल बाद ही इस स्तूप का निर्माण हुआ हो और बाद में यह प्रकृति के दुर्व्यवहार से अपना अस्तित्व खो गया हो। इस स्थली को पार्श्वनाथकालीन सिद्ध करने वाला प्रमाण अभी जमीन के अन्दर ही है। हाँ, पार्श्व प्रभु के कुछ वर्षों बाद स्तूप का निर्माण हुआ होगा यह कुछ उपलब्ध प्रमाणों से कहा जा सकता है। १. भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म ईसा पूर्व ७वीं सदी में हुआ। इस समय स्मृति संजोने हेतु एवं स्थान चिह्नित करने हेतु एक मात्र साधन था स्तूप निर्माण। /२. इन्द्रनन्दी श्रुतावतार के अनुसार आचार्य अर्हदबली ने एक पंचस्तूप संघ की भी स्थापना की थी। आचार्य अर्हदबली का समय सन् ३८ से १०७ के बीच बताया गया है।

प्रो० सागरमल ने बरगोहली पहाड़पुर (बंगाल) से प्राप्त ई०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन् ४७९ के एकमात्र पत्र के हवाले से पंचस्तूपान्वय को काशी का बताया है। इस पंचस्तूपान्वय का अस्तित्व ईसा की दसवीं शताब्दी तक रहा। संभव है प्राचीन काल में यहाँ पंचस्तूप रहे हों। जिनमें से एक के प्रतीक चिह्न लोगों ने प्रत्यक्ष देखे हों।

सुनील जैन के अनुसार सन् १८२४ में पभोसा पर्वत पर प्रतिष्ठित हुई भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति को १९७१ में मूलनायक बनाया गया। यह मूर्ति चमत्कार पूर्ण है।

२५-२६ वर्ष पूर्व की एक घटना है—पुजारी भगवान् के अभिषेक के लिये मन्दिर में पहुँचा। उसने जाकर देखा कि भगवान् पार्श्वनाथ के पास में एक चितकबरा नाग बैठा है। पुजारी बिना घबराये कुछ देर तक खड़ा रहा। कुछ समय बाद वह सर्प अलग हो गया तो पुजारी ने बिना भयभीत हुए भगवान् का अभिषेक किया। अभिषेक के बाद वह सर्प पुनः भगवान् के पास जा बैठा। कई लोगों ने यह दृश्य देखा तथा कितने ही लोगों ने चित्रादि लिये। कुछ समय तक वह सर्प बड़े इत्मीनान से शांतभाव पूर्वक बैठा रहा। श्रावकों के देखते ही देखते वह सर्प कहाँ गया, किसी को पता नहीं चला। और भी ऐसी कई चमत्कार पूर्ण घटनायें है जिनने भगवान् पार्श्वनाथ की जन्मभूमि पर दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों को चकित और आकर्षित किया है।

नौ

दो मई रविवार उन्नीस सै निन्यानवें को आचार्य संघ भेलूपुर दिगम्बर जैन मन्दिर पधारा। मन्दिर अत्यन्त मनोज्ञ एवं आकर्षक है। विशाल मन्दिर के अन्दर तीन वेदियाँ हैं। बीचोंबीच है भगवान् पार्श्वनाथ की अत्यन्त मनोज्ञ आकर्षक शांतिदायक एवं दुःखहारक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमा। भगवान् की इतनी सुन्दर आकृति है कि देखो तो देखते ही रह जाओ। सर्प की कुंडली जैसी वेदी पर विराजमान प्रभु के सिर पर छत्र-त्रय अति शोभायमान होते हैं। इसी वेदी पर दो छोटी-छोटी पार्श्व प्रभु की मनोज्ञ प्रतिमायें हैं। पहले यहाँ तीसरे स्थान पर काले पाषाण की भगवान् पार्श्व का छोटी-सी अत्यन्त आकर्षक मूर्ति विराजमान थीं जो अब बायीं वेदी में विराजमान है।

मूलवेदी के दायीं ओर भगवान् सुपार्श्वनाथ जी की प्रतिमा मूलनायक रूप में विराजमान है। बायीं ओर भगवान् चन्द्रप्रभु जी की श्वेतवर्णी श्यामवर्णी प्रतिमा विराजमान है। दायीं ओर बायीं वेदी में मूर्तियाँ की अधिकता देखते हुए यह अनुमान लगता है कि पहले वाराणसी के आस-पास ऐसे बहुत से गाँव थे जिनमें जैन मन्दिर थे। बाद में उन गाँवों से जैन लोग यत्र-तत्र चले गये होंगे और उन मन्दिरों की मूर्तियाँ यहाँ के मन्दिर में विराजमान करवाईं होंगी।

वर्तमान में धनंजय ग्राम के जैन सुन्दरपुर में रहते हैं। यह सभी महावीर दि० जैन मन्दिर नरियाँ, दर्शन को आते हैं। साहिबाबाद में एक जैन मन्दिर ६-८-८४ को स्थापित किया हुआ है। गंगापुर में एक चैत्यालय है। हाथी गाँव में २५ जैन घर व एक नया मन्दिर है। खोजवाँ नगर में भी एक मन्दिर है। यह सभी ग्राम काशी जनपद के अन्तर्गत है जहाँ अभी भी जैन मन्दिर व जैन समाज है।

वाराणसी के जैन मन्दिरों में एक मन्दिर वह भी है जिसमें हीरे की मूर्ति विराजमान थी बाद में चोरों द्वारा लूट ली गई। इस मन्दिर की स्थापना लगभग १०० वर्ष पूर्व हुई थी। यह "भाट की गली वाला चैत्यालय" के नाम से प्रसिद्ध था। एक चैत्यालय राजा दरवाजा में है जिसका १९९९ में पुनः जीर्णोद्धार हुआ।

जिनालयों से शोभित काशी एक दर्शनीय एवं वंदनीय स्थान तो है ही ऐतिहासिक स्थान भी है। प्रत्येक सम्मेदशिखर जी जाने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या वहाँ से वापिस आने वाले यात्रियों को तो कम से कम यहाँ के दर्शन अनिवार्य रूप से करना ही चाहिये।

卐 卐 卐 卐 卐

अष्टपाहुड की वाचना

एक अच्छी कविता की कुछ पंक्तियाँ जो क्षेत्र पर आगमन के काफी निकट है; प्रस्तुत है—

जन्म–मरण से मुक्त हुए जो, उनकी महिमा न्यारी।
उनके प्रेरक जीवन के भवि–जन बनते अनुचारी ।।
उनके पूजन–वंदन आदिक, उत्सव सुख संचारी।
परम स्वहित प्रेरणा प्रदायक, जो अति मंगलकारी ।। १ ।।
श्रेष्ठ शलाका पुरुषों के, उत्सव हैं योग्य मनाना।
संसारी लोगों के उत्सव, हैं संसार बढ़ाना ।।
अगर चाहते जन्म मरण का अपना क्लेश मिटाना।
तो तज पराशक्ति सार्थक है, सम्यक् बोध जगाना ।।

पुनः सम्पूर्ण दिनचर्या–साधुचर्या आचार्य श्री के आचार्य–त्व में चलने लगी। दिन आये गये और फिर आये। इन्हीं दिनों पंडित फूलचंद्र जी प्रेमी आचार्य संघ के दर्शनार्थ आये। उनके सामने "वाचना" की बात रखी गई उन्होंने बात सहर्ष स्वीकार कर ली।

१० मई से आचार्य भगवान् कुंदकुंद के अष्टपाहुड (षट्पाहुड) की वाचना प्रारम्भ हुई। साधुओं और श्रावकों दोनों की दृष्टि से विषय का चुनाव सबको जँचा था। अष्टपाहुड आचार्य कुंदकुंद का ऐसा ग्रन्थ है जो एकदम सरल शब्दों में मुनियों को और श्रावकों को पथ दर्शन देता है।

सम्पूर्ण जैन समुदाय में आचार्य कुंदकुंद स्वामी का अपना अलग ही कोई विशिष्ट महत्व है। इनकी समयसार,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, रयणसार, भक्तिसंगहो, बारसाणुवेक्खा जैसी कई कृतियाँ वर्तमान विज्ञ समाज के सामने उपस्थित हैं। आचार्य कुंदकुंद को अपने समय का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक कह देना भी कोई अतिश्योक्ति नहीं है। उन्होंने संसारी प्राणियों की मानसिक, दैहिक, पारमार्थिक एवं अन्य शक्तियों का निरीक्षण-परीक्षण कर उन्हें मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है।

"अष्टपाहुड" की वाचना आचार्य श्री के मंगलाचरण से प्रारम्भ हुई। डॉ० फूलचंद्रजी प्रेमी के संयोजकत्व में पं० उदयचंद्र जैन, डॉ० सुदर्शन लालजी, डॉ० कमलेशकुमार जी, डॉ० महेन्द्रकुमार "मनुज", मुन्नीबाबू आदि विद्वान् भाग ले रहे थे। वाचना के माध्यम से कई शंकाओं का समाधान हुआ। कितनी ही समस्याओं का समाधान आचार्य श्री की पावन वाणी से हुआ।

अष्टपाहुड की अमृत जैसी गाथाओं ने ज्ञान तो दिया ही अपने साहित्यिक सौष्ठव की तरफ भी आकर्षित किया। प्रस्तुत है कुछ चुनी हुई गाथायें—

सम्मत्तादोणाणं, णाणादो सव्वभाव उवलद्धी।
उवलद्ध पयत्थे पुण, सेयासेयं वियाणेदि ॥ दं०पा० १५ ॥
जं सक्कई तं कीरइ, जं च ण सक्कई तं च सद्दहणं।
केवलि जिणेहिं भणियं, सद्दहमाणस्स होइ सम्मतं ॥ दं०पा० २२ ॥
जीवाजीव विभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायदिदोसरहिओ, जिणासासणे मोक्खमग्गोति ॥ चा०पा० ३९ ॥
एगो मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसण लक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा ॥ भा०पा० ५९ ॥
जं मया दिस्सदे रूवं, तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णेव, तम्हा जंपेमि केण हं ॥ मो०पा० २९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे, विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई, अप्पा दुंक्खेहि भावए ।। मो०पा० ६२ ।।
हिंसा रहिये धम्मे, अट्ठारस दोस वज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे, सद्दहणं होई सम्मत्तं ।। मो०पा० ९० ।।

ग्रन्थराज अष्टपाहुड में ऐसी कई गाथायें है, जिनमें से अगर एक सूत्र को भी जीवन में अपना लिया जाये। तो निश्चय से परम पद की प्राप्ति हो सकती है।

वाचना का समापन चालीस दिन बाद श्रुत पंचमी के पावन दिन हुआ। जिसमें विद्वानों के निवेदन पर आचार्य श्री ने अष्ट पाहुड का सार (उपसंहार) प्रस्तुत किया जो वास्तव में ग्रंथ का रस या निचोड़ ही था।

卐 卐 卐 卐 卐

पावन पर्व श्रुतपंचमी

श्रुत पंचमी का त्रि-दिवसीय (१८ से २० मई) कार्यक्रम आज से प्रारम्भ हो चुका था। दोपहर में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ। सभा में बनारस के कई प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ-साथ बाहर से पधारे हुए विद्वान् भी थे। कार्यक्रम की शुरूआत कु० अनु-प्रिया जैन के मंगलाचरण से हुई। मंगलाचरण के पश्चात् संयोजक महोदय ने कार्यक्रम की रूप रेखा प्रस्तुत की पश्चात् एक-दो विद्वानों ने अपने विचार रखे। तत्पश्चात् पं० (डॉ०) फूलचंद्र जी प्रेमी ने आचार्य श्री के आदेश से मुझसे निवेदन किया कि महाराज श्री शुरू में आप बोले ताकि आज के संदर्भ में जो-जो कार्यक्रम है उनका सहज सरल रूप में सभी को एक विवरण प्राप्त हो जाये।

बोलना शुरू करता उसके पहले ही दस मिनट के लिये घड़ी सामने रख दी गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैंने मंगलाचरण के बाद अपनी बात शुरू की—मैं भगवान् आदिनाथ से लेकर महावीर तक कुछ न बोलूँगा क्योंकि अगर इन पर बोलूँ तो शायद है रात न हों पाये। अतः भगवान् महावीर पर भी कुछ नहीं कहूँगा। हाँ ! स्वार्थ वश भगवान् आदिनाथ, शांतिनाथ एवं महावीर का नाम अवश्य लूँगा।

सर्वविदित है आज श्रुतपंचमी का पावन पर्व है। इस दिन श्रुत की सुरक्षा हुई थी। बात यों थी कि—भगवान् महावीर के सभी शिष्य-प्रशिष्य सुबुद्ध थे अतः श्रुतज्ञान की परम्परा ६८३ वर्ष तक मुखाग्र रूप से चलती रही। ६८३ वर्ष बाद दूसरे आचार्य भद्रबाहु हुए इनके शिष्यों में भी श्रुतज्ञान के कुछ अंशों का ज्ञान था। इनकी परम्परा में अनेक सिद्धान्तों के ज्ञात मुनि हुये। उनमें आचार्य धरसेन एवं आचार्य कुंदकुंद का भी नाम प्राप्त होता है।

गिरिनार जी की तलहटी की चंद्र गुफा में रहने वाले आचार्य धरसेन मुनि ने जब अपनी आयु अल्प जानी तो उन्हें भय हुआ कि उनके पास जो ज्ञान है। वह भी लुप्त न हो जाये। प्रवचन वात्सल्य के कारण उन्होंने वेण्णा तट पर आचार्य अर्हदबली के सान्निध्य में पंचवर्षीय प्रतिक्रमण के लिये एकत्रित हो रहे साधुओं के प्रति एक पत्र लिखा और ब्रह्मचारी के द्वारा भेजा।

ब्रह्मचारी त्वरित गति से आचार्य अर्हदबली के पास पहुँचा तथा उपस्थित मुनिराजों को नमस्कार का पत्र प्रदान किया। पत्र पढ़कर शीघ्र ही आचार्य अर्हद्‌बली स्वामी ने दो मेधावी मुनिराजों को आचार्य धरसेन के पास जाने की आज्ञा दी।

तीव्र गति से चलते हुये वे मुनिराज जब धरसेन गुरु के पास पहुँचने वाले थे। तब रात्रि में आचार्यश्री ने एक स्वप्न में दो श्वेत तरुण बैल अपनी ओर आते तथा नमस्कार करते देखे। वे समझ गये कि पत्रोत्तर में कोई मुनिराज क़ल पधारने वाले हैं।

प्रातः ही उन्होंने उच्चारण किया "जयदु.सुद देवता" अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतदेवता जयवंत हों। अनायास कुछ ही काल बाद दो मुनिराज उनके सामने आ उपस्थित हुये तथा भक्ति भाव पूर्वक उन्हें नमस्कार किया। आचार्य धरसेन ने उन्हें वात्सल्य पूर्ण आशीर्वाद दिया तथा विश्रामादि करने को कहा।

मुनियों के चारित्रानुसार कुछ दिन विश्राम के बाद एक दिन आचार्य धरसेन ने उनकी मेधा एवं धारणा शक्ति आंकने के लिये उन दोनों को एक कम व एक अधिक अक्षर वाला एक-एक मंत्र दिया तथा मंत्र सिद्ध कर परिणाम (फल) बताने को कहा।

वे दोनों मुनिराज़ एकांत में मंत्राराधना करने लगे। उनकी एकाग्रता के कारण शीघ्र ही एक-एक देवी उनके सम्मुखउपस्थित हुई। जिन मुनिराज के मंत्र में कम अक्षर था, उनके पास एक आँख वाली देवी तथा जिन मुनिराज के पास मंत्र में ज्यादा अक्षर था उनके पास बड़े बड़े दाँतों वाली देवी आ उपस्थित हुई। उन मुनियों ने सोचा ऐसा तो देवों का स्वरूप नहीं है। अवश्य ही मंत्र में कोई त्रुटि है। वे व्याकरण के माध्यम से मंत्रों की त्रुटियाँ दूर कर पुनः आराधना करते हैं परिणामस्वरूप दोनों के सामने अत्यन्त सुन्दर दो देवियाँ उपस्थित होती हैं तथा पूछती हैं—हमें क्या आज्ञा है।

मुनिऱाज कहते हैं—हमें कुछ काम नहीं, मात्र गुरु के आदेश से यह कार्य किया है। आप अपने-अपने स्थान पर वापिस जाये।

दोनों मुनि आकर गुरु धरसेन से मंत्राराधना स्वरूप प्राप्त हुये परिणाम को कहते हैं।

मुनिराज धरसेन उनके सम्पूर्ण वृत्त को सुनकर समझ जाते हैं कि यह दोनों महा मेधावी एवं धारणा शक्ति से युक्त साधु हैं। वे शुभ तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त्तादि में अपना आग्रायणी पूर्व के पंचम वस्तु अधिकार के महाकर्म प्रकृति नामक सिद्धान्त का ज्ञान उन्हें प्रदान करना प्रारम्भ करते हैं।

वे द्वय मुनिराज अत्यन्त सजगता पूर्वक निरालख्य रूप होकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगातार ज्ञानार्जन करते रहे। आषाण मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन उनका अध्ययन कार्य समाप्त होता है।

इस रात्रि को देवों ने विषम दंत पंक्ति वाले एक मुनिराज की दंत पंक्ति सुन्दर करके उन्हें पुष्पदन्त नाम दिया तथा भूतजाति के देवों ने दूसरे मुनिराज की नाना प्रकार से पूजा कर उन्हें भूतबलि नाम दिया।

आचार्य धरसेन ने अपनी आयु अल्प जानकर 'कहीं इन मुनिराजों को उनके समाधिमरण का खेद न होवे' अतः अन्यत्र विहार करा दिया। दोनों मुनिराज अंकलेश्वर पहुँचे तथा कालांतर में षट्खण्डागम की रचना की। इस महाग्रन्थ में षट्खण्ड है उनकी रचना श्रुतपंचमी के दिन पूर्ण हुई थी। अतः तभी से श्रुत पंचमी का पावन पर्व प्रारम्भ हुआ। इस श्रुत पंचमी का विशेष महत्व इसीलिये भी है कि इस दिन शास्त्र सुरक्षा का उपक्रम शुरू हुआ था।

आचार्य गुणधर ने भी धरसेन स्वामी की तरह अपना ज्ञानप्रवाह पूर्व के दशम वस्तु सम्बन्धी तीसरे प्राभृत का ज्ञान नागहस्ति आर्यमंक्षु को दिया। पेज्जदोष नामक इस तीसरे प्राभृत का ज्ञान गुरु नागहस्ति-आर्यमंक्षु से आचार्य यतिवृषभ को प्राप्त हुआ जिसे पाकर उन्होंने "कषायपाहुड सुत्त" की रचना की।

यह भी ज्ञात ही है कि आचार्यश्री आदिसागर जी (अंकलीकर) आचार्य जैसा महान् पद श्रुतपंचमी के दिन ही प्राप्त हुआ था। वे महान् तपस्वी एवं ध्यानी आचार्य थे। प्रस्तुत है उनका संक्षिप्त परिचय—आचार्यश्री आदिसागर जी का जन्म नाम शिवगौड़ा पाटिल था। पिता सिद्धगौड़ एवं माता अक्काबाई के घर में उन्हें भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी १८६६ को जन्म लिया। अकंलीनगर जिला-सांगली में जन्में श्री शिवगौड़ा महान् शूरवीर थे।

उन्होंने १९०६ में भट्टारक जिनप्पा स्वामी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। क्षुल्लक अवस्था में उन्होंने खूब धर्म प्रभावना करते हुए दहीगाँव में ८-९-१९१३ में ऐलक दीक्षा ग्रहण कर ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैराग्य के परिणाम उत्तरोत्तर बढ़ते गये और आपने कुंथलगिरि में मगसिर शुक्ला दोज को मुनि दीक्षा धारण कर ली। मुनि दीक्षा धारण कर कई भव्यों को व्रत संयम धारण कराये।

जब संघ बढ़ने लगा तो उन्हें आचार्य पद प्रदान किया गया और सौभाग्य का विषय तो यह है कि उस दिन पावन पर्व श्रुत पंचमी थी। आचार्य शिरोमणि श्री आदिसागरजी ने धर्म की प्रभावना करते हुए क्षुल्लक शान्तिसागर जी को ऐलक दीक्षा प्रदान थी।

क्षुल्लक महावीर कीर्ति महाराज को ऐलक एवं मुनिदीक्षा प्रदान की तथा अंत में अपना आचार्य पद प्रदान कर फाल्गुन कृष्णा तेरस सन् १९४४ को १४ दिन के उपवास पूर्वक समाधि मरण किया।

मैंने वर्तमान में हो रहे संस्कृत विद्यालयों के ह्रास की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना चाहा पर समय हो चुका था। अतः विराम लेना पड़ा।

मुनिश्री सुविधिसागर जी ने जरूर वर्तमान शिक्षा पद्धति विद्वानों की प्रतिक्रियायें, साधु एवं श्रावक के सम्बन्धों पर गहरा विवेचन प्रस्तुत किया।

आचार्य श्री ने अपने अमृत वचनों से सभी धर्मानुरागियों को धर्मोपदेश देते हुये कहा कि वास्तव में हम सबका भी दायित्व बनता है कि जिनवाणी की सुरक्षा करें। आज नई-नई पुस्तकें तो खूब छप रही हैं, छपें, उनसे मुझे कोई शिकायत नहीं पर मैं इतना मात्र सुधार करवाना चाहता हूँ कि पुराने साहित्य के प्रकाशन हेतु भी सावधानी पूर्वक पहल की ज़ायें।

जिनवाणी को वेष्टन में बाँधना उसकी जिल्द बनवाना आदि भी ज्ञान वृद्धि में कारण है। प्रत्येक श्रावक को चाहिए कि वह श्रुत की सुरक्षा हेतु अपनी कुछ दान राशि भी निश्चित करें। जिनवाणी से ही कल्याण हो सकता है अतः जिनवाणी को मन में भी सुरक्षित करने के उपक्रम करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज कहा करते थे कि ज्ञान वह खजाना है जो कभी भी नष्ट नहीं हो सकता है। और न ही कोई छीन या चुरा ही सकता है।

आज के ही दिन प०पू० मुनि कुंजर आचार्य शिरोमणि श्री आदिसागर जी (अंकलीकर) को आचार्य पद प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने आचार्यत्व का पूर्णरूपेण पालन कर एक आदर्श जीवन बिताया। उनकी आज ८६वाँ आचार्यपद दिवस स्मृति है। मैं भी उन जैसा जीवन जीकर मोक्ष पद को प्राप्त करूँ।

जय बोलो महावीर भगवान् की....जय।

आचार्य श्री के बाद कई विद्वानों ने अपने विचार रखे जो बड़े महत्वपूर्ण रहे। आभार प्रदर्शन के साथ सभा समाप्त हुई।

卐 卐 卐 卐 卐

श्रुत रक्षा पर्व

मैंने श्रुत पंचमी पर्व पर एक गीत लिखा था इसमें कुछ इतिहास को बटोरने का प्रयत्न है, प्रस्तुत है—

श्रुत की रक्षा करो, स्वयं सब, मुमुक्षुओं का प्यारा है।
स्वच्छ, सुरक्षित, वृद्धि करना, यह कर्त्तव्य हमारा है।।
आदिप्रभु से पार्श्व प्रभु तक वाणी जो बहती आई।
महावीर प्रभु के वचनों में, वह अस्तित्व स्वयं लाई।।
पूर्ण ज्ञान को पाकर प्रभु ने सम्यक् वचन उचारा है।
स्वच्छ सुरक्षित वृद्धि करना, यह कर्त्तव्य हमारा है।।
श्रुत की रक्षा... ।। १ ।।

वृषभसेन से गौतम स्वामी, गणधर देव कहे भाई।
उनसे ही पूर्वाचार्यों तक, यह वाणी कल-कल आई।।
श्रुतज्ञानी श्रुत धारण युत थे, स्वानुभव का द्वारा है।
स्वच्छ सुरक्षित वृद्धि करना, यह कर्त्तव्य हमारा है।।
श्रुत की रक्षा... ।। २ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भद्रवाहु, गुणधर, धरसेन, यतिवृषभ पुष्पदंताचार्य।
भूतबलि, उच्चारण स्वामी, कुमार नंदि कुंदकुंदाचार्य ।।
उमास्वामी, भद्र, पूज्य, प्रभा, श्रुत महावीर की धारा है।
स्वच्छ सुरक्षित वृद्धि करना, यह कर्त्तव्य हमारा है ।।
श्रुत की रक्षा... ।। ३ ।।

ज्ञान बिना सब भटक रहे हैं, मिथ्यातम है घना अपार।
जब तक ज्ञान नहीं है सम्यक् कैसे मिलवे भव का पार ।।
सुखमय, ज्ञानमयी बन जाने, बस इक यही सहारा है।
स्वच्छ सुरक्षित वृद्धि करना, यह कर्त्तव्य हमारा है ।।
श्रुत की रक्षा... ।। ४ ।।

पूर्वाचार्यों की वाणी को, हमें सुरक्षित रखना है।
जीर्ण-शीर्ण जो ग्रन्थ हो रहे, उनको हमें निखारना है ।।
माता जैसी सेवा करके, देना उसे अछारा है ।।
स्वच्छ सुरक्षित वृद्धि करना, यह कर्त्तव्य हमारा है ।। ५ ।।
श्रुत की रक्षा करो स्वयं सब, मुमुक्षुओं का प्यारा है।
स्वच्छ, सुरक्षित, वृद्धि करना, यह कर्त्तव्य हमारा है ।।

卐 卐 卐 卐 卐

विद्वत् संगोष्ठी

दूसरे दिन प्रातः अभिषेक पूजन के बाद 'श्रुतस्कंध विधान' का आयोजन हुआ। जो कि पण्डित महेन्द्र 'मनुज' के आचार्यत्व में धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

दोपहर को संगोष्ठी का आयोजन था कई विद्वान् पधार चुके थे। गोष्ठी प्रारम्भ हुई। सभी विषय "भगवान् पार्श्वनाथ" से सम्बन्धित थे। कई विद्वानों ने अपने आलेखों का वाचन किया। जिनमें प्रमुख हैं—डॉ० उदयचंद्रजी, पं० अमृतलाल जी, डॉ० सुदर्शन लाल जी, डॉ० फूलचंद्र प्रेमी, डॉ० सनतकुमार जयपुर, डॉ० महेन्द्र कुमार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'मनुज', एडवोकेट छोटेलाल झाँसी, एडवोकेट अनूपचंद्र फिरोजाबाद, पं० जमना प्रसाद जी एवं श्रीमति प्राचार्या सुलोचना जैन, सुश्री निर्मला जैन आदि। प्रारम्भ में विषय स्थापन श्री सुनील जैन ने किया।

आलेख अथवा उनके अंशों की प्रस्तुति यहाँ इसलिये नहीं की जा रही है, क्योंकि उनकी एक स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

संगोष्ठी में आचार्य संघ सहित कई व्रती एवं विद्वानों का मंगल सान्निध्य मिला। आभार प्रदर्शन द्वारा गोष्ठी समाप्त हुई। डॉ० महेन्द्र 'मनुज' द्वारा लगाई गयी प्राचीन शास्त्रों की प्रदर्शनी अत्यन्त सफल रही। ऐसे कार्यों की वर्तमान में आवश्यकता भी है, जिनसे युवावर्ग स्वाध्याय में रुचि लेने लगे।

卐 卐 卐 卐 卐

केशलोंच व स्थानान्तरण

तृतीय और अंतिम दिन आचार्य श्री का एवं मेरा केशलोंच था। सभा का प्रारम्भ प्रातः ८ बजे से हुआ। कई विद्वानों ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए साधु-जीवन एवं केशलोंच पर महत्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये।

आचार्यश्री अपने मंगल आशीर्वाद में कहा—आप लोग सोचते हो कि क्या महाराज को कष्ट नहीं होता, जो इस बेरहमी से बालों को उखाड़ फेंकते हैं? कष्ट तो होता है; क्योंकि जैसा शरीर आपका वैसा ही उनका है; हाँ, अंतर सिर्फ इतना है कि आप रागी हैं और ये विरागी। जहाँ वैराग्य होता है वहाँ कष्ट भी कष्ट जैसा मालूम नहीं पड़ता। साधुओं को तो साधना द्वारा शरीर को कष्ट पहुँचाने में आनन्द आता है।

केशलोंच वह परीक्षा है जो प्रत्येक उस व्यक्ति से ली जाती हैं जो साधु बनकर मोक्ष मार्ग पर बढ़ना चाहता है। कहीं कोई बेकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदमी अथवा कचरा साधु मार्ग में न आ जाये। कहीं कोई रागी या मायावी इस मार्ग में न आ जाये इसलिये यह परीक्षा ली जाती है। इस परीक्षा में वे ही उत्तीर्ण हो पाते है जो ज्ञानी और सच्चे देवशास्त्र गुरु के भक्त होते हैं।

बाहर के बाल बाद में उखड़ते हैं पहले अंदर के राग रूपी बाल उखाड़े जाते हैं। जिसने अन्दर के बाल नहीं उखाड़े वह शरीर के बाल भी नहीं उखाड़ सकता। बालों को उखाड़ फेंकना कर्मों को उखाड़ फेंकना हैं। इसलिये ही दीक्षा के पहले केशलोंच होता कि यह व्यक्ति कर्मों को उखाड़ने में समक्ष होगा या नहीं। कई परीक्षाओं से गुजरना होता है साधु होने के लिये। साधु बनने के बाद भी प्रत्येक चार माह में नियम से यह परीक्षा देनी होती है ताकि ज्ञात हो सके कि कहीं साधु के अन्दर मोह तो पुनः नहीं घुस गया है।

साधु और श्रावक मोक्षमार्ग पर चलने वाली गाड़ी के दो पहिये है। साधु बिना श्रावक का उद्धार नहीं हो सकता और श्रावक बिना साधु के आचरण का पालन नहीं हो सकता। दोनों का आपस में बहुत बड़ा सम्बन्ध है। इसीलिये आचार्य कहते हैं कि श्रावक साधु को दान देवे और साधु श्रावक को ज्ञान देवें।

आचार्यश्री के प्रवचन का रस सभी को आ रहा था। आचार्य श्री की अमृत वाणी सहज सरल एवं आगम पूर्ण होती है।

जिनवाणी स्तुति के बाद आचार्यश्री ने संघ का स्थानान्तरण इस मन्दिर से सड़क के किनारे वाले मन्दिर पर कर दिया। दोनों मन्दिरों में लगभग ८०-९० कदम का ही फर्क है। यह मन्दिर लगभग १२५-३० वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था। इसका निर्माण श्री खड्गसेन उदयराज जैन ने सं० १८२५ में कराया। इसके लिये भूमि पाने के लिये उन्होंने तत्कालीन सरकार से काफी संघर्ष किये थे। दोनों मन्दिर के मध्य तीसरा वह मन्दिर है जिस पर लगभग दो सौ वर्षों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहले श्वेताम्बरों ने कब्जा कर लिया था। वर्तमान में वे यहाँ एक विशाल मन्दिर बनवा रहे हैं।

वर्तमान में आचार्य संघ खड्गसेन उदयराज जैन मन्दिर में ही यही विराजमान है। बड़ा ही सुन्दर एवं एकांत स्थान है। कोलाहल से बहुत कुछ दूर है।

दस

यहाँ पर प्रतिदिन के साथ रविवार को आचार्यश्री एवं सघस्थ साधुओं का विशेष मंगल प्रवचन होता है। आचार्यश्री वाणी सुनने के लिये दूर-दूर से श्रावक आते तथा आनन्द पाते हैं। प्रस्तुत है रविवार को दिये गये दो महत्वपूर्ण मननीय प्रवचन—

प्रार्थना से परमात्मा की प्राप्ति संभव : आचार्य श्री सन्मतिसागरजी

हमारा मुख अगर घर की ओर है, पर की ओर है, धन और तन की ओर है, दुकान और मकान की ओर है, तो मिथ्यात्व। और अगर मन्दिर की ओर है, प्रवचन की ओर है, दान और ध्यान की ओर है तो सम्यक्त्व। अपनी आत्मा को निहारना, चाहना और पुकारना है सम्यक्त्व। पर में भटकना, अटकना और लटकना है मिथ्यात्व। आज विज्ञान ने बड़ी से बड़ी खोंजे कर ली है, सैकड़ों किलोमीटर की स्थिति अपनी आँखों से देख सकते हैं, हजारों किलीमीटर की स्थिति अपने कानों से सुन सकते हैं। बर्फ पर चल सकते हैं, आग में रह सकते हैं, पानी में रह सकते हैं, आसमान में उड़ सकते हैं। कहने का तात्पर्य विज्ञान ने सब कुछ सिखा दिया लेकिन मानव को मानव जैसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहना नहीं सिखाया, धरती पर कैसे चलें ? यह नहीं सिखाया। दुनिया भर के सम्बन्ध तो बनवा दिये, लेकिन पड़ोसी के साथ जीना नहीं सिखलाया।

उक्त उद्‌गार तपस्वी सम्राट् आचार्यश्री सन्मतिसागर जी ने व्यक्त किये। उन्होंने आगे कहा—कि विज्ञान ने भौतिक सुखों की तो खोज कर ली, लेकिन सुख नहीं पा सके। इतनी खोजें होने के बाद भी आत्मा की खोज नहीं कर पाये, आत्मा की खोज भगवान् महावीर और उनकी संस्कृति में रहने वालों के अलावा कोई और कर भी नहीं सकता। और अगर कोई करना चाहेगा, तो उसे महावीर प्रभु की संस्कृति को अपनाना ही पड़ेगा।

आचार्यश्री ने आगे कहा कि—प्रार्थना से ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। बिना परमात्मा की प्रार्थना किये मोक्ष की, स्वर्ग की, वैकुण्ठ की प्राप्ति होना सर्वथा असंभव है। क्योंकि लौकिक में भी देखा जाता है कि जो व्यक्ति, शिक्षक बनना चाहता है वह शिक्षक की सेवा करता है, नेता बनना है तो नेता की, डॉक्टर बनना चाहता है तो कम्पाउण्डर बनकर डाक्टर की सेवा करता है। उसी तरह अगर तुम्हें परमात्मा बनना है, तो परमात्मा की भक्ति आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। भगवान् तभी बन पाओगे जब उनके पद चिह्नों पर चलोगे, उनके जीवन को अपना आदर्श बनाओगे। भगवान् कोई नेता, डॉक्टर या उच्च अधिकारी नहीं है जो तुम्हारी चाटुकारी में आकर तुम्हें भी भगवान् बना दें। अगर भगवान् बनना है तो राम जैसे बन जाओ, महावीर जैसे बन जाओ, पार्श्वनाथ जैसे बन जाओ। बन जाने के दो अर्थ एक उनके जैसा जीवन जिओ और दूसरा उनके जैसे वन को जाओ जंगल जाओ। तभी तुम भी भगवान् बन जाओगे। फिर लौटकर संसार में नहीं आओगें।

卐 卐 卐 卐 卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल्य समर्पण और श्रद्धा का होता है

ज्ञान समान न आन जगत में सुख का कारण ।
इह जन्मामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण ।।

वास्तव में जिनको इन पंक्तियों का ज्ञान हो जाता है वे ही साधु और व्रतियों के प्रवचन सुनते हैं । देखो फिर भी संसारी जीव कितना व्यस्त है । नारकी जीव तो मार काट में व्यस्त हैं । देव अपने इन्द्रिय सुखों में व्यस्त हैं । मनुष्य फुर्सत में भी व्यस्त है, उसे स्वयं ही पता नहीं कि मैं व्यस्त किस काम में हूँ । और पशुओं में मायाचारी खाने-पीने की व्यस्तता है ।

धार्मिक मालिक का अधार्मिक नौकर भी जिस तरह मालिक का अनुशरण करता है उसी तरह स्वर्ग के मिथ्यादृष्टि देव भी अपने सम्यग्दृष्टि धार्मिक स्वामियों का अनुशरण करते हैं । जो तीव्र मिथ्यात्व से ग्रसित होते हैं वे धार्मिक कार्यों से बचने का प्रयास करते हैं । अगर आप भी सोच रहे हो कि फँस गये तो ध्यान रखो ! फँसे बिना कभी कल्याण नहीं हो सकता है ।

समर्पण में चमत्कार होता है । मैं तो अपनी बात करता हूँ—मुझसे जैनों को कम और अजैनों को लाभ ज्यादा होता है । इन्दौर की घटना है—एक मुनि महाराज शौच को जा रहे थे एक मुसलमान ने नमस्कार किया, उन्होंने पूरा आशीर्वाद दिया तो उसने सोचा कि आज पंजा आयेगा और लाटरी में पंजे पर दाँव लगा दिया और वह जीतता गया । ऐसा लगातार कई दिन तक हुआ तब वह मुनिराज के पास गया और बोला—महाराज आपने जो नम्बर बताये वह पूरे आये हैं अतः कुछ दान करना चाहता हूँ । मुनिराज बोले—अरे... मैंने तो आशीर्वाद दिया था, जैन मुनि कभी नम्बर नहीं बताते ।

तो मैं कहता हूँ समर्पण और श्रद्धा का मूल्य है । आपको कुछ आता है या नहीं आता, मूल्य इसका नहीं, मूल्य है श्रद्धा का । आप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन, वंदन, भक्ति तो करिये लाभ अवश्य होगा, पर शर्त एक है मन में छल नहीं होना चाहिये ।

जिनेन्द्र भगवान् वास्तव में किसी को कुछ नहीं देते । परन्तु उनका भक्त अपने भक्ति भावों से पुण्य अर्जित कर लेता और सुख प्राप्त करता है । चमत्कार भक्ति में होता है भगवान् में नहीं । साधुओं की सेवा तो करो, आहार दान तो दो, आपके दुःख, शोक, रोग आदि अपने-आप भाग जायेंगे ।

हाँ, तो अब कहूँ कि आप फँसे नहीं बल्कि आत्मोन्नति के मार्ग पर बढ़ रहे हैं । जब आपको साधु संगति और व्रत नियमों का आनन्द आने लगेगा, तब आप कहेंगे वास्तव में वह गुरु कितने अच्छे थे जिन्होंने मुझे धर्ममार्ग में लगाया । तो धर्म में लगकर आत्मा का आनन्द प्राप्त करो, मोक्ष तो फिर मिल ही जायेगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षिप्त वास्तु नियम

मन्दिरों से सम्बन्धित कुछ वास्तु नियमों को नीचे दर्शाया जा रहा है। यह सर्वविदित है, वास्तु शास्त्र के अनुसार ही निर्मित मन्दिर या घर उन्नति एवं सुखवृद्धि आदि में सहायक होते हैं, अन्य नहीं।

१. मन्दिर का मुख्य दरवाजा पूर्व या उत्तर दिशा की ओर होना चाहिये। दरवाजे की ऊँचाई वेदी पर विराजमान मूलनायक प्रतिमा से कुछ ज्यादा ही होना चाहिये ताकि मुख्य दरवाजे पर खड़ा होकर कोई भी मूर्ति को पूर्णरूपेण देख सके।

२. मूर्ति का मुख भी पूर्व या उत्तर दिशा में ही श्रेष्ठ माना गया है।

३. मूर्ति की आँखें पूर्ण और ऊपर की ओर न खुली हुई हों, यह ऊर्ध्व दृष्टि दोष कहलाता है जो कि समाज, राज्य, परिवार एवं यजमान को बहुत ही हानिकारक है।

४. मूलवेदी के पृष्ठ भाग पर खिड़की अथवा दरवाजा आदि नहीं होना चाहिये।

५. कुआँ मन्दिर के उत्तर, पूर्व, ईशान या पश्चिम में ही उचित होता है।

६. आसपास स्थित वृक्ष या मकानों की छाया मन्दिर के शिखर पर नहीं पड़ना चाहिये।

७. क्षेत्रपाल या इसी प्रकार के अन्य देवी-देवता का स्थान ईशान या वायव्य दिशा में श्रेष्ठ माना जाता है।

८. अगर मन्दिर नगर की सीमा के आसपास है तो मन्दिर का पृष्ठ भाग नगर की तरफ नहीं होना चाहिये॥

९. कैसी भी स्थिति में मूर्ति के सामने मूर्ति से छोटा दरवाजा अथवा दीवाल नहीं होना चाहिये।

१०. मन्दिरों, वेदियों, कटनियों और मूर्तियाँ की संख्या विषमांक ठीक मानी जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. मूलनायक प्रतिमा की दृष्टि के सामने कोई वाधा खम्बा, पिलर या दीवाल नहीं होना चाहिए। इससे दृष्टि-दोष होता है। प्रतिमा के सामने मन्दिर का दरवाजा अवश्य होना चाहिए। उस दरवाजे की ऊँचाई में नौ भाग करके नीचे से सातवें ऊपर से तीसरे भाग में से प्रतिमा की दृष्टि निकलना चाहिए।

१२. वेदी ठोस हो उसमें नीचे कहीं से कोई आलमारी आदि न हो।

१३. वेदी पुरुष की नाभि से नीची न होना चाहिए।

१४. उत्तम मन्दिर की वेदी का प्रदक्षिणा पथ होना चाहिए। दीवार में या दीवार के साथ लगा हुआ ऐसा जिनबिम्ब और उत्तम पुरुष की मूर्ति सर्वथा अशुभ मानी गयी है।

१५. प्रतिमा जी पर छत्र त्रय का क्रम सबसे ऊपर छोटा, बीच में मँझोल और सबसे नीचे बड़ा छत्र होना चाहिए।

१६. उपांगहीन मूर्ति अगर प्राचीन है तो कदाचित पूज्य हो सकती है किन्तु अंगहीन मूर्ति पूज्य अथवा प्रतिष्ठा योग्य नहीं मानी गई है।

देश, नगर, समाज अथवा व्यक्ति विशेष पर वास्तुशास्त्रानुसार बनाये हुये मन्दिरों और भवनों का शुभ प्रभाव पड़ता है तथा वास्तु शास्त्रानुसार न बनने वाले मन्दिरों और भवनों का दुष्प्रभाव भी झेलना पड़ता। वर्तमान में ऐसे कई नगर और तीर्थक्षेत्र हैं जहाँ मन्दिर और मूर्तियाँ तो बहुत मात्रा में विशाल-विशाल देखने को मिलतीं हैं पर वहाँ समाज का एक भी श्रावक नहीं है और है तो विपन्नावस्था में। कारण है मन्दिरों या मूर्तियों का वास्तुशास्त्रानुसार निर्माण का न होना। इसलिये चाहे वह चंद्रपुरी हो या भदैनी घाट अथवा अन्य कोई मन्दिर, उसका शास्त्रानुसार होना उसकी उन्नति में सहायक होगा।

वर्तमान में यहाँ खड्गसेन उदयराज दिगम्बर जैन मन्दिर के द्वार को ऊँचा करने का क़ार्यक्रम आचार्य श्री आदिसागर जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अंकलीकर) के तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री सन्मतिसागर जी के निर्देशन से चल रहा है। यहाँ प्रतिमा की दृष्टि बाधित होती थी।

वाराणसी जनपद के जैन मन्दिर

१. भगवान् पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, भेलूपुर
२. श्री खड्गसेन उदयराज जैन मन्दिर, भेलूपुर
३. श्री प्रभुदास का सुपार्श्वनाथ मन्दिर, भदैनी घाट
४. बाबू छेदीलाल दिगम्बर जैन मन्दिर, भदैनी घाट
५. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, काश्मीरीगंज, खोजवाँ
६. सेठ स्वरूपचन्द हुकुमचंद दि० जैन महावीर मन्दिर, नरिया
७. पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर, ग्वालदास साहू लेन
८. लाला बिहारी लाल दिगम्बर जैन मन्दिर, मैदागिन चौराहा
९. दिगम्बर जैन चैत्यालय, भाट की गली
१०. दिगम्बर जैन चैत्यालय, राजादरवाजा
११. श्री श्रेयांसनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, सारनाथ
१२. श्री चंद्रप्रभु दिगम्बर जैन मन्दिर, चंद्रपुरी (चंद्रावती)
१३. दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिर, मंझवाँ
१४. विन्द्रा प्रसाद जैन का दिगम्बर जैन मन्दिर, शहाबाबाद
१५. श्री दुर्गाप्रसाद का गृह चैत्यालय, गंगापुर
१६. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, मुगलसराय (दीनदयाल नगर)
१७. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, हाथी बाजार

यात्रियों हेतु उपलब्ध आवास

१. श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र (धर्मशाला) भेलूपुर
२. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर धर्मशाला, मैदागिन

4550

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य १०८ श्री सन्मतिसागर जी महाराज (ससंघ)

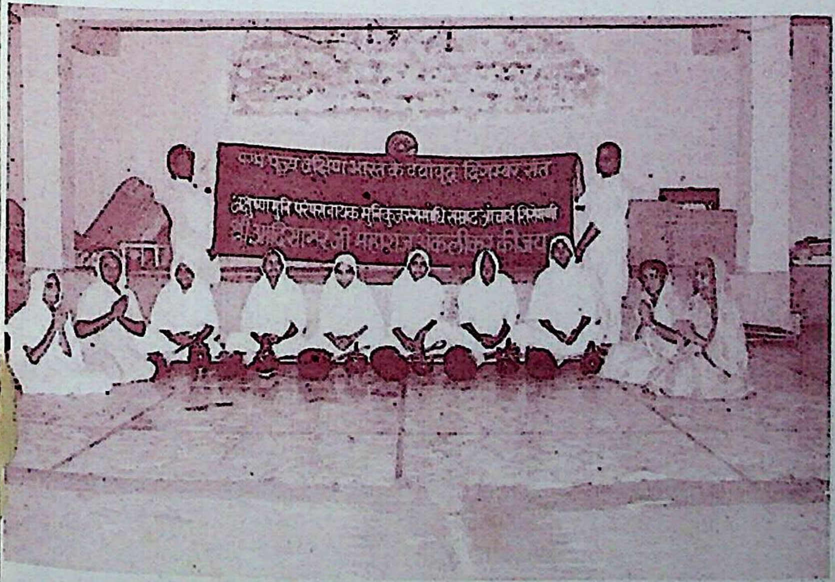

आचार्य १०८ श्री सन्मतिसागर जी महाराज आर्यिका संघ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्व० श्री शिवचरण लाल जी जैन अलवरवासी

एवं

स्व० श्री देवेन्द्रकुमार जी जैन कोटावासी की स्मृति में

प्रकाशन सहयोगी

श्रीमती दीपा एवं डॉ० निर्मल जैन

अरिहंत डायग्नास्टिक

महमूरगंज, वाराणसी

☎:(Cl.) 360789, (R.) 352789

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi